मैथिलीशरण गुप्त के राम-काव्य



राम–भक्त मैथिलीशरण

डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र

मैथिलीशरण गुप्त के राम-काव्य



राम–भक्त मैथिलीशरण

डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र

मैथिलीशरण गुप्त के राम-काव्य

लेखक

डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र

अध्यक्ष : स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग

फीरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक

हिन्दी सभा

लालबाग, सीतापुर-२६१ ००१

लेखक
डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र

प्रथम संस्करण
रामनवमी, २१ अप्रैल, २००२

मूल्य
सजिल्दः एक सौ पचास रूपये मात्र
अजिल्दः एक सौ पचीस रूपये मात्र

संगणक
कबीर खान, रायबरेली
सानुबन्ध प्रिन्टर्स, लखनऊ

मुद्रक
ट्रेड मैक्स प्रिन्टर्स, प्रताप काम्प्लेक्स,
फैज़ाबाद रोड़, लखनऊ (उ०प्र०)

प्रकाशक
हिन्दी सभा, लाल बाग, सीतापुर (उ०प्र०)

MATHILISHARAN GUPT KE RAMKAVYA by DR. PANDEY RAMENDRA, PRICE-150/= (Sazild), 125/= (Azild) PUBLISHED by HINDI SABHA, LALBAGH, SITAPUR (U.P.)

प्रकाशकीय

डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। उन्हें साहित्यिक संस्कार उत्तराधिकार में प्राप्त हुए हैं। सृजनशीलता उनका उपाधि-धर्म है।

डॉ० पाण्डेय का अध्यवसाय अप्रतिहत तथा अप्रतिम है। उन्होंने प्राचीन और अर्बाचीन दोनों ही प्रकार के साहित्य का गहन अध्ययन किया है। उनका यह अध्ययन उनकी अनेक रचनाओं में अपने पूर्ण वैभव के साथ मुखर है।

डॉ० पाण्डेय 'मान्नस' के विदग्ध व्याख्याता के रूप में विश्रुत हैं। उनकी रामकथापरक विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ तुलसी तथा उनके साहित्य को विशेष रूप से समझने में सहायक होती हैं। 'मानस-चिन्तन' जैसे ग्रन्थ उन्हें मानस-मर्मज्ञ सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

'मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य' शीर्षक यह ग्रंथ डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र की सारस्वत-साधना की विशिष्ट उपलब्धि है। इसमें श्री मैथिलीशरण की रचनाधर्मिता को वाणी का विषय बनाने का सार्थक उपक्रम किया गया है। प्रयत्न किया गया है कि गुप्त जी का 'कवि' उद्घाटित होकर सर्वजन सुलभ हो सके। इस दिशा में लेखक का अध्ययन जहाँ सहायक सिद्ध हुआ है, वहीं उसका प्रतिपादन कौशल भी उपयोगिता की कसौटी पर खरा उतरा है।

डॉ० पाण्ड़ेय मूलतः अध्यापक हैं। किसी भी विषय को सहज रूप में प्रस्तुत करने की उनकी अपनी एक शैली है जो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। प्रस्तुत ग्रंथ उनकी इस शैली का निर्मल दर्पण है। गूढ़ से गूढ़ तथ्यों के निरूपण में वे सर्वथा निष्णात् हैं। उनकी अभिव्यक्ति की सहजता, सरलता तथा सरसता निश्चय ही प्रशंसनीय है। वे निर्विवाद रूप से हिन्दी-जगत के गौरव हैं।

हिन्दीसभा डॉ० पाण्डेय की प्रस्तुत कृति को सर्वजन सुलभ कर अनिर्वचनीय गरिमा का अनुभव कर रही है।

साहित्य-भूषण
डॉ० गणेशदत्त सारस्वत
अध्यक्ष : 'हिन्दी सभा' सीतापुर

रामकथा के अधिकारी विद्वान

मेरे गुरुश्रेष्ठ

साहित्य मनीषी

डाँ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन'

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

विश्वभारती-शान्ति निकेतन (प०बं०)

को सादर

– पाण्डेय रामेन्द्र

डॉ. पाण्डेय रामेन्द्र की विद्वता और वक्तृता से मैं पहले से ही प्रभावित रहा हूँ। उनकी समीक्षा दृष्टि सर्वप्रथम मैने "साकेत अनुशीलन" में देखी। "मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य" नाम से प्रकाशित इस कृति की पाण्डुलिपि का अवगाहन करके श्री पाण्डेय की समीक्षात्मक-परख, तथ्यपरक् बेबाक टिप्पणियों तथा शोध प्रवृत्ति से विशेष रूप से अभिभूत हुआ। "मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य" में राष्ट्रकवि की रचनात्मक दुरूहताओं, निर्णयात्मक विवशताओं तथा उनके रचनाकार के मन को छूने वाली रामकथा कृतियों से ग्राह्य-अग्राह्य का इतना शोधपरक विवरण आजतक संभवतः मैने प्रकाशित रूप में नही देखा। इसकी भाषा अत्यन्त सरल तथा सम्प्रेषणीय होने के साथ-साथ अभिव्यक्ति को यथेष्ट अर्थवत्ता प्रदान करती है। मैं आश्वस्त हूँ कि यह समीक्षाकृति गुप्त जी के साहित्यिक वांगमय में रुचि रखने वाले हिन्दी-प्रेमियों तथा शोधार्थियों के साथ-साथ अध्यापन से जुड़े साहित्य चिन्तकों के लिए बहुत ही उपयोगी रहेगी।

- केशरी नाथ त्रिपाठी
कवि-लेखक-साहित्य चिंतक
अध्यक्ष, विधान-सभा, (उ.प्र.)

अनुक्रम

मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य

राम तुम्हारा वृत्त............

राम अनंत हैं। जो अनंत है उसके सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय थोड़ा होगा। फिर भी बाल्मीकि से लेकर आज तक हर रचनाधर्मी उनके सम्बन्ध में कुछ न कुछ लिखता आया है; क्योंकि उस परम के प्रति कहने की लालसा और कवि कर्म की सार्थकता राम पर बिना लेखनी उठाये पूरी नहीं होती। राम के प्रति मैथिलीशरण जी की सुप्रसिद्ध काव्य-पक्तियाँ हैं–

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।

राम का उदात्त चरित्र ही काव्यमय है, इसीलिए गुप्त जी उनके चरित्र पर अपने भावोद्‌गार व्यक्त करने की उत्कट (आंतरिक) अभिलाषा का मोह संवरण नहीं कर सके। साकेत की भूमिका में मैथिलीशरण जी ने स्वयं कहा है–

"इच्छा थी कि सबके अन्त में, सहृदय पाठकों और साहित्यिक बन्धुओं के सम्मुख 'साकेत' समुपस्थित करके अपनी धृष्टता और चपलताओं के लिए क्षमायाचना पूर्वक विदा लूँगा।"

रामकाव्य परंपरा में गौरवपूर्ण स्थान बनाने के लिए परमावश्यक था कि कवि गुप्त परम्परा से हटकर कुछ नया लिखें जो युगधर्म से अनुप्राणित हो, युगीन संदर्भों पर आधारित हो। अभिप्राय यह है कि रामकथा को प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत करने में ही मैथिलीशरण जी ने अपना हित समझा। इसके लिए रामकथा-प्रधान अन्य ग्रन्थों के प्रति गुप्त जी को बीसवीं शताब्दी में भारतीय भाषाओं के सर्वोपरि प्रगतिशील रचनाकार माइकेल मधुसूदन दत्त कृत 'मेघनाद वध' का गंभीर अध्ययन अत्यंत आवश्यक प्रतीत हुआ। यह ग्रंथ

राम-भक्त कवि को इतना उत्कृष्ट प्रतीत हुआ कि उसका हिन्दी में काव्यानुवाद (छायानुवाद) भी कर डाला। इस छायानुवाद से गुप्त जी को रामकाव्य-सृजन की जो नई दृष्टि प्राप्त हुई उसी का प्रतिफल है- पंचवटी, साकेत, लीला और प्रदक्षिणा काव्य। गुप्त जी की ये रचनाएं माइकेल कृत 'मेघनाद वध' के प्रभाव से अनुप्राणित हैं। कवि गुप्त के सम्पूर्ण रामकाव्यों में लक्ष्मण का चरित्र, राम का युग-पुरुष रूप तथा उन्हें मानवीय भाव-भूमि पर प्रस्तुत करने की मूल प्रेरणा वस्तुतः मधुसूदन दत्त की कृति 'मेघनाद वध' से प्राप्त की है।

जिस प्रकार साकेत को लिखने में गुप्त जी को सोलह वर्ष लगे उसी प्रकार मुझे भी 'मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य' को पूर्ण करने में सोलह वर्ष लगे हैं। यह समीक्षा कृति शायद प्रकाशित ही न हो पाती यदि इसमें मेरे प्रिय शोधछात्र अमृतलाल ने अपने सुलेख द्वारा पाण्डुलिपि तैयार न की होती। इसी प्रकार इस समीक्षा कृति का प्रकाशन भी तभी सम्भव हुआ जब मेरे अग्रज श्रद्धेय श्री कौशलेन्द्र पाण्डेय ने अविलम्ब 'प्रेस कापी' तैयार करने के लिए मुझे बाध्य किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सतत् समर्पित हिन्दी सभा, सीतापुर के अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० गणेशदत्त सारस्वत की कृपापूर्ण अनुमति और उनका 'आशीर्वाद' भी इस कार्य में विशेष सहयोगी रहा है। मैं इन सभी सहयोगी तथा शुभचिंतकों के प्रति आभार व्यक्त कर उनका अवमूल्यन नहीं करना चाहता।

फ़ीरोज़ गाँधी कालेज़ के प्रबंध मंत्री और सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् सम्माननीय श्री ओंकार नाथ भार्गव का कृपापूर्ण प्रोत्साहन, कालेज के प्राचार्य डॉ० रघुनाथ प्रसाद वर्मा तथा राजनीति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ० राम बहादुर वर्मा की समय-समय पर प्रोत्साहन-भरी उक्तियाँ इस कार्य को आगे बढ़ाने में विशेष सहयोगी रहीं हैं। मैं इन शुभेच्छुओं का भी कृतज्ञ हूँ।

डॉ पाण्डेय रामेन्द्र

राम-जन्मोत्सव **१६४३, प्राइवेट, इंदिरा नगर, (मध्य)**
रविवार, २१ अप्रैल, २००२ **रायबरेली-२२६ ००१**

पारिवारिक परिवेश

मैथिलीशरण गुप्त को राम-भक्ति और काव्य-साधना विरासत में मिली थीं। उनके पितामह ललनू गुप्त परम वैष्णव थे। उन्हें हिन्दी और संस्कृत-साहित्य बहुत प्रिय था। नित्य प्रति तुलसी कृत 'विनय पत्रिका' का सम्पूर्ण पारायण उनका व्यसन था। वैष्णव-भावना और साहित्यानुराग पुत्र रामचरण को पिता से संस्कार रूप में प्राप्त हुए। इस परिवार में सखी भाव से सीताराम की उपासना होती आयी थी। वे आद्या-शक्ति सीता के बिना राम की कोई चर्चा अनुपयुक्त समझते थे। एक प्रकार से सीता ही उनकी आराध्येश्वरी थीं।[१] अतः रामचरण जी ने अपने तृतीय पुत्र का नाम 'मिथिलाधिपनन्दिनी शरण' रखा। नाम के अधिक लम्बे होने के कारण कालान्तर में 'मैथिलीशरण' नाम ही लोक में प्रचलित हुआ। गुप्त जी के पिता सेठ रामचरण मधुरोपासक होने के साथ ही साथ कला-प्रेमी भी थे। गुणी जनों का स्वागत उनके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग था। संगीत से विशेष प्रेम होने के कारण उनके यहाँ तानपुरा, सितार, तबला, करताल, पखावज, सारंगी और हारमोनियम इत्यादि वाद्य-यन्त्र सदैव तैयार स्थिति में रहते थे। पवित्रता से रहना तथा धार्मिक विचारों के प्रति कट्टरता सेठ रामचरण के व्यक्तित्व की विशेषता

---

(१) ''सखी भाव की उपासना के कारण पिता जी सीता के बिना राम की बात ही न करते थे। वही उनकी इष्ट-देवता थीं। उन्होंने अपनी 'रहस्य रामायण' की रचना के आरम्भ में लिखा है कि महादेव जी ने बहुत काल तक राम का ध्यान किया। प्रभु ने उन्हें दर्शन तो दिये, परन्तु यही कहा–'नहिं प्रसन्न तुव जप तप साधे, प्रिया जानकी बिनु आराधे। तब शिव ने युगल-मूर्ति का ध्यान किया।''
–मैथिलीशरण गुप्तःव्यक्ति और काव्य–डॉ० कमलाकान्त पाठक पृ० १२

थी। रामलीला तथा रासलीला का आयोजन कराना उन्हें बहुत प्रिय था।[1]

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर राम नाम का स्मरण और भजन वे स्वयं तो करते ही थे, साथ ही बच्चों को भी इसके लिए प्रेरित करते। घर के बालकों को पौराणिक आख्यान सुनाना तथा भक्ति पूर्ण श्लोकों को कण्ठस्थ कराना उनका प्रतिदिन का कार्य था। 'रामचरितमानस' और 'अध्यात्म रामायण' का नित्य-प्रति पाठ करना, गाँव के ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे पाठ कराना सेठ जी का व्यसन था। स्नान के बाद डेढ़-दो घंटे तक युगल सरकार के मंत्र का जाप करना और बाहर जाने पर भी 'मानस' के गुटके को साथ ले जाना उनके लिए अनिवार्य था। इस प्रकार राम-भक्ति एवं संगीतमय परिवेश के बीच सेठ रामचरण 'कनकने'–जिनका कवि नाम (उपनाम) 'कनकलता' था, पर लोक में वे **'कनकने'**[2] के नाम से प्रसिद्ध हुए थे-भक्ति प्रधान पदों की रचना करते। उन्होंने छोटे-बड़े कई काव्य रचे थे। 'रहस्य रामायण' उनका अपूर्ण ग्रन्थ है, जिसके तीन काण्ड ही वे रच पाये थे कि अकस्मात उनका स्वर्गवास हो गया।

'रहस्य रामायण' की अपूर्णता के साथ-साथ गुप्त जी के पिता की एक और अन्तिम इच्छा अपूर्ण रह गयी थी। 'रामचरितमानस' और 'अध्यात्म रामायण' के प्रति मैथिलीशरण गुप्त जी के पिता में अटूट आस्था एवं विश्वास था। इन दोनों ग्रन्थों का सहस्र-सहस्र बार पारायण करने का उन्होंने संकल्प किया था; पर जब वे लगभग आठ सौ बार ही दोनों ग्रन्थों का पारायण कर पाये थे तभी उनका निधन हो गया। पिता की इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति का संकल्प उनके दो पुत्रों–रामकिशोर जी तथा मैथिलीशरण जी ने लिया। रामकिशोर जी ने 'अध्यात्म रामायण' का और मैथिलीशरण जी ने 'रामचरितमानस' का दो सौ बार से भी कहीं अधिक निरन्तर पाठ

---

(१) इस प्रकार गुप्त जी की राम के प्रति अनन्य भावना पिता के प्रभाव का परिणाम थी। उनमें रामलीला के प्रति विशेष लगाव था। इसके पीछे वे परीक्षा की बिना चिन्ता किये रामलीला-मण्डली के साथ ओरछा चले गये जिसके परिणाम स्वरूप गुप्त जी को स्कूली शिक्षा से हाथ धोना पड़ा।

(२) सखी भाव के भक्त होने के कारण सेठ रामचरण का कवि नाम (उपनाम) कनकलता था; पर लोक में वे 'कनकने वंश' में जन्म लेने के कारण 'कनकने' के नाम से ही प्रसिद्ध थे।

किया। 'मानस' के इस अनवरत पाठ से गुप्त जी में राम-भक्ति के संस्कार और प्रबल हुए। फलतः वे राम-भक्ति प्रधान काव्यों के सृजन की ओर विशेष रूप से उन्मुख हुए। मैथिलीशरण जी की माँ विशेष पढ़ी न थीं, पर प्रतिदिन 'रामचरितमानस' और 'रामस्तवराज' का पाठ करने के उपरान्त ही वे जल ग्रहण करती थीं। इस प्रकार राम-भक्ति, काव्य-सृजन और कला के प्रति प्रेम गुप्त जी को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुये थे।

गुप्त जी ने यद्यपि कितने ही पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों पर काव्य--रचना की, परन्तु उनका स्पष्ट कथन था-'राम चरित्र समान है, अन्य चरित्र न मित्र।' इसीलिए 'वनवास', 'अशोकवाहिनी सीता', 'रामचन्द्र का गंगावतरण' एवं 'सीता का पृथ्वी–प्रवेश' इत्यादि मैथिली बाबू की रामपरक स्फुट रचनायें हैं। उन्होंने कालिदास कृत 'रघुवंश' के आधार पर 'महाराज दशरथ का आखेट' और 'प्राणघातक माला' जैसी कविताओं की भी सृष्टि की थी। इन स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त गुप्त जी ने रामकथा प्रधान अनेक प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन किया था।

साकेत-सृजन की प्रेरणाभूमि

अनेक सफल काव्य कृतियों के सृजन से गुप्त जी के कवि व्यक्तित्व में पर्याप्त प्रौढता आ गई थी। इसीलिए उनमें अपने इष्टदेव पर महाकाव्य सृजन की बलवती आकांक्षा जगने लगी थी। इस लोकेष्णा से प्रेरित होकर वे रामकथा प्रधान महाकाव्य के सृजन का मन बना रहे थे। इन्हीं दिनों बंगला में महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का 'काव्येर उपेक्षिता' शीर्षक निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने भारतीय साहित्य की उपेक्षिताओं की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया था। इसी निबन्ध से प्रेरणा लेकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के जुलाई १६०८ वाले अंक में भुजंगभूषण भट्टाचार्य के छद्म नाम से 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' नामक एक निबंध प्रकाशित किया। इस निबंध ने हिन्दी के सभी काव्यानुरागियों का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रेरणाप्रद निबन्ध का कवि गुप्त पर भी प्रभाव पड़ा। उन दिनों वे द्विवेदी जी के सानिध्य में रहकर काव्य-सृजन में चूड़ान्त निमग्न थे। फलतः गुप्त जी ने मन ही मन ऊर्मिला पर काव्य रचने का संकल्प लिया और सन् १६०६ तथा १० के बीच 'ऊर्मिला' नामक खण्डकाव्य के ढाई सर्ग उन्होंने रच भी डाले। इस अपूर्ण खण्डकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने ऊर्मिला-लक्ष्मण के संयोग शृंगार का वर्णन किया था। द्वितीय सर्ग में कैकेयी द्वारा राम के राज्याभिषेक में अवरोध उपस्थित करना वर्णित था तथा तृतीय सर्ग (अपूर्ण) में राम के साथ वन जाने को आतुर लक्ष्मण अपनी माँ सुमित्रा से विदा लेने हेतु उनके पास पहुँचते हैं। यहीं तक के वृत्तांत को तृतीय सर्ग में गुप्त जी ने काव्य का रूप दिया था। यहाँ कवि गुप्त के अपूर्ण 'ऊर्मिला' काव्य के प्रथम सर्ग का उदाहरण प्रस्तुत करना उचित होगा–

लज्जा भरे लोचन ऊर्मिला के, ऊँचे हुए पंकज से खिला के।
परन्तु नीचे फिर हो गये वे, थे काम के केतन से नये वे।
दोनों कृती हो कुछ देर शान्त, भूले रहे देह-दशा नितांत।
पूर्ण-प्रभा को करके सनाथ, सानन्द बैठे फिर एक साथ।[1]

आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा से इं० छोटेलाल (जो हिन्दी-जगत में वार्हस्पत्य जी के नाम से प्रसिद्ध थे) ने १ जनवरी, सन्१९११ को गुप्त जी को एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने सरस्वती में प्रकाशित ऊर्मिला विषयक लेख का संदर्भ देते हुए ऊर्मिला पर खण्डकाव्य लिखने का गुप्त जी से विशेष आग्रह किया था। इस विस्तृत पत्र में वार्हस्पत्य जी ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव भी मैथिलीशरण जी को दिये थे, जो इस प्रकार हैं :–

"..................... अगर ऊर्मिला के वास्ते रामायण महाकाव्य में जगह न हो तो ऊर्मिला विरह शीर्षक एक नया खण्डकाव्य रचें और उसमें ऊर्मिला के हृदय में सब तरह के भावों का दृश्य हिन्दी प्रेमियों को दिखलावें। मेरी राय है कि इस काव्य में इन दो–तीन बातों का जरूर ख्याल रखा जावे–

(१) भारतीय काव्य के नवों रस दिखलाये जावें।

(२) शृंगार रस निर्देश में अश्लीलता का लेशमात्र भी न हो। साथ ही तुलसीदास की सीता की तरह ऊर्मिला निर्गुण भी न हो। नख-शिख वर्णन इस तरह किया जावे जिस तरह आजकल के अच्छे घरों की बहू बेटियाँ आपस में किया करती हैं।

(३) भाषा सरल हो। जहाँ कहीं छंदोबंध के लिये संस्कृत शब्दों के समासों का प्रयोग आवश्यक हो, वहाँ फुटनोट देकर मतलब जरूर समझाना चाहिए।

(४) जगह-जगह पर विरहिणी ऊर्मिला के मुख से किसी बारहमासे की

---

(१) मै०श० गुप्त : व्यक्ति और काव्य–डॉ० कमलाकान्त पाठक, १५६। इस छन्द का उल्लेख डॉ० नगेन्द्र ने भी 'साकेत एक अध्ययन' के अन्तर्गत 'सृजन प्रेरणा' में किया है। आचार्य द्विवेदी ने भी इस छन्द का उल्लेख अनेक लोगों से किया था।

लय में षड्-ऋतु-वर्णन जरूर कराना चाहिये। छंद संस्कृत हो मगर बारहमासे की तरह गाने लायक।

(५) काव्य के प्रधान विषयों में से निम्नलिखित जरूर हों–

ऊर्मिला विवाह, राम युवराजोत्सव, लक्ष्मण का ऊर्मिला से बगैर मिले वन को जाना, ऊर्मिला विरह, हनुमान का संजीवनी लेकर जाते हुए अयोध्या में ठहरना और ऊर्मिला से लक्ष्मण का हाल कहना, ऊर्मिला का मौन--विलाप, चौदह वर्ष की अवधि बीतने पर राम-लक्ष्मण का अयोध्या में आना और लक्ष्मण-ऊर्मिला (का मिलन और) संवाद।[१]''

वार्हस्पत्य जी का पत्र प्राप्त होने के अनन्तर गुप्त जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ सन् १६०६ और १० में लिखे गये ऊर्मिला विषयक अपूर्ण काव्य की सम्पूर्ण सामग्री वार्हस्पत्य जी के पास भेज दी। भेजी गयी सामग्री के प्रथम सर्ग में ६४ पद्य, द्वितीय सर्ग में ८७ पद्य तथा तृतीय सर्ग में मात्र १३ पद्य रचे गये थे। इनकी रचना कवि ने वर्ण-वृत्तों में की थी।

गुप्त जी द्वारा प्रेषित 'ऊर्मिला' काव्य की सम्पूर्ण सामग्री को देखने पर वार्हस्पत्य जी ने कवि को मर्यादित श्रृंगार रस के प्रयोग का सुझाव दिया। आचार्य वार्हस्पत्य के निर्देशों का पालन करते हुए कवि 'ऊर्मिला उत्ताप' काव्य के सृजन में लग गया। कालान्तर में उसी सामग्री को ऊर्मिला पर आधारित साकेत के प्रथम सर्ग में परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया गया। इस परिप्रेक्ष्य में अपूर्ण 'ऊर्मिला' काव्य तथा साकेत की सामग्री प्रस्तुत करना समीचीन होगा:–

ऊर्मिला काव्य–

छोड़ा प्रिया ने दृग पुष्प-वाण, ज्यों-ज्यों किया यों प्रिय ने प्रयाण।
परन्तु दोनों मन योग-वाले, न एक से एक हुए निराले।।[२]

साकेत– किन्तु जहाँ है मनोनियोंग
वहाँ कहाँ का विरह वियोग?[३]

(१) मै०श० गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ–सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, २१६-२१७
(२) मै०श० गुप्त : व्यक्ति और काव्य--डॉ० पाठक, १५६
(३) साकेत--१/४२

साकेत से पूर्व गुप्त जी द्वारा लिखे गये अपूर्ण ऊर्मिला काव्य से सम्बन्धित जो जानकारी[२] डॉ० कमलाकान्त पाठक के शोध-प्रबन्ध 'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य' से इस लेखक को हुई उसके आधार पर सन् १९८६ में गुप्त जी के पुत्र ऊर्मिलाचरण गुप्त को एक पत्र लिखा जिसके उत्तर में ऊर्मिलाचरण जी ने लेखक को जो पत्र भेजा उसका महत्वपूर्ण अंश निम्नांकित है :–

'मुझे इस प्रकार के ऊर्मिला काव्य की जानकारी नहीं है। वह साकेत में ही आ गया है। मुझे अभी तक ऐसा कुछ मिला भी नहीं है।'

इस विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने जो अपूर्ण ऊर्मिला काव्य पहले लिखा था उसकी सामग्री को संशोधित, परिष्कृत और मर्यादित रूप में उन्होंने साकेत में पुनः सुनियोजित किया।

अन्तर की प्रेरणा से कवि अपने इष्टदेव राम पर महाकाव्य रचने को अधीर था। वाह्य प्रेरणा (आचार्य द्विवेदी एवं वार्हस्पत्य) का दबाव अत्यधिक था; फिर भी कवि गुप्त के 'ब्रह्म' को जैसे 'ऊर्मिला' नाम स्वीकार न था। वह पाँच महीनों तक संकल्प-विकल्प, विचार-विनिमय में उलझा रहा, फिर 'ऊर्मिला' पर आधारित कविता का जो अंश प्रकाशित होने के लिए कवि ने आचार्य द्विवेदी के पास भेजा, उसका शीर्षक प्रभु की प्रेरणा (या चमत्कार) से गुरुवर द्विवेदी ने स्वयं बदलकर 'साकेत' कर दिया। इस नाम बदलने की प्रेरणा भी द्विवेदी जी को कालिदास कृत 'रघुवंश' तथा अन्य ग्रंथों से प्राप्त हुई।[1]

यह 'प्रसाद' काव्य-गुरु के आशीर्वाद के साथ ही साथ कवि गुप्त को धर्म-संकट से उबारने वाला सिद्ध हुआ। 'साकेत' नामकरण के आधार पर गुप्त जी ने 'लोक लाहु पर लोक निबाहू' जैसी गोस्वामी जी की काव्योक्ति को चरितार्थ कर दिया। अर्थात् उन्होंने अपनी आन्तरिक इच्छा के अनुसार आराध्यदेव 'राम' पर महाकाव्य की रचना भी कर ली

(१) दे०-हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ० ६८। "पहले इसका नाम भी 'ऊर्मिला' रखा गया था, परन्तु द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में इसे 'साकेत' नाम से अभिहित किया, जिसकी पुष्टि करते हुए बताया कि महाकवि कालिदास के काव्यों में, भाष्यकार पंतजलि तथा अन्य संस्कृत-आचार्यों के ग्रन्थों में, बौद्धधर्म के 'दिव्यावदान' में और जिन सेनाचार्य तथा विक्रमाचार्य के जैन पुराणों में 'साकेत' का वर्णन मिलता है।

और गुरु-आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने ऊर्मिला के महच्चरित्र का निर्माण भी किया। फलतः रामकाव्य परम्परा में 'साकेत' को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

डॉ० शम्भुनाथ पाण्डेय ने साकेत के प्रेरणा-स्रोत के सम्बन्ध में गुप्त जी से जो जिज्ञासा की, उसके उत्तर में वे सहज-भाव से कह गये–''अपने विषय में क्या कहूँ? इष्टदेव के विषय में कुछ लिखना ही था 'साकेत' लिख गया। कैसा लिखा गया, इसे आप लोग जानें।'' 'साकेत' में गुप्त जी के निवेदन का आरम्भिक अनुच्छेद और शम्भुनाथ पाण्डेय को गुप्त जी द्वारा लिखा गया पत्र दोनों यह सिद्ध करते हैं कि वे अपने आराध्यदेव 'राम' पर ही महाकाव्य की रचना करना चाहते थे। उनमें कहीं न कहीं तुलसी जैसी ख्याति को प्राप्त करने की लालसा थी। इसीलिए उन्होंने अपने को केवल ऊर्मिला तक केन्द्रित नहीं रखा; बल्कि लगभग सम्पूर्ण रामकथा को 'साकेत' में समाहित किया और जिन चरित्रों को 'मानस' में विशेष स्थान नहीं मिला, उन्हें अपने काव्य में समुचित स्थान दिया, ऊर्मिला-चरित्र की मौलिक सृष्टि करने के साथ-साथ अनेक नवीन उद्भावनाओं द्वारा 'साकेत' को हिन्दी रामकाव्य-परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में वे सफल रहे। यह उन पर आराध्यदेव की विशेष कृपा ही थी।

साकेत-सृजन के लिए प्रेरणा देने वालों में आचार्य द्विवेदी और वार्हस्पत्य जी के अलावा मुंशी अजमेरी, गुप्त जी के अनुज सियारामशरण गुप्त तथा रायकृष्णदास जी की सतत् प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग भी अविस्मरणीय है। इन लोगों की सजगता और तत्परता के फलस्वरूप ही कवि गुप्त 'साकेत' काव्य-सृजन के लगभग सोलह वर्षों के मध्य आने वाली विपदाओं, अवरोधों और विरोधों को पार करते हुए अंततः इस महाकाव्य की रचना कर सके थे। साकेतकार ने अपने महाकाव्य का प्रथम सर्ग जून १९१६ में लिखा और द्वितीय सर्ग जुलाई १९१६ में; फिर तृतीय सर्ग जुलाई १९१८ में लिखा गया। इसी के मध्य गुप्त जी अन्य महत्त्वपूर्ण काव्यों की भी रचना करते रहे। फलतः समय-समय पर 'साकेत' के सृजन का क्रम बाधित होता रहा। इस प्रकार 'साकेत' की रचना में गुप्त जी को लगभग पंद्रह वर्ष लगे। सन् १९३१ में यह प्रबन्धकाव्य पूर्ण हुआ और सन् १९३२ में इसका प्रकाशन सम्भव हो सका।

साकेत : नामकरण का औचित्य और निर्वाह

इंजी० छोटेलाल वार्हस्पत्य से प्रत्यक्षतः प्राप्त प्रेरणा के आधार पर आरम्भ में काव्य-सृजन की शुरुआत ऊर्मिला को केन्द्र बनाकर की गई। उन्होंने इसे **'ऊर्मिला उत्ताप'** या **'ऊर्मिला काव्य'** नाम दिया। कुछ विचारकों का मत है कि आरम्भ में इस काव्य का नाम 'ऊर्मिला विलाप' रखा गया था; पर ये नाम, मात्र ऊर्मिला प्रधान होने के कारण कवि की अंतरात्मा के प्रतिकूल थे। इसीलिए कुछ दिनों में ये विलुप्त हो गये।

'साकेत' नाम को गुप्त जी ने सदैव ध्यान में रखते हुए रामकथा की सारी घटनाओं अथवा कार्य-व्यापारों को 'साकेत' से जोड़ने में बराबर सतर्कता बरती है। इस प्रकार साकेत सम्पूर्ण घटनाओं का सदैव केन्द्र बना रहता है। विवेच्य काव्य का 'साकेत' शीर्षक पाठक के लिए चित्ताकर्षक तो है ही, साथ में उसमें उत्सुकता या कुतूहल जगाने वाला भाव भी है। 'साकेत' महाकाव्य के सभी सर्ग किसी न किसी रूप में अयोध्या से जुड़े हुए हैं; जिन पर यहाँ दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

'साकेत' का प्रथम सर्ग राम का अवतार, अयोध्या माहात्म्य, ऊर्मिला और लक्ष्मण के संयोग श्रृंगार के मध्य हास-परिहास तथा संलाप पर आधारित है। इस सर्ग में राम के होने वाले अभिषेक की सूचना भी दी गई है। चित्रकर्त्री ऊर्मिला ने एक चित्र बनाया है जो अपनी पूर्णता के लिए कुतूहलवर्द्धक है। इस चित्र में तूलिका से रंग फैल जाना अमंगल का सूचक है। यहीं पर यह सर्ग समाप्त हो जाता है।

द्वितीय सर्ग दासी मंथरा और रानी कैकेई की कुमंत्रणा एवं उसके दुष्परिणाम पर आधारित है। कैकेई भरत के लिए अयोध्या का सिंहासन और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास वरदान-रूप में माँगती है, जिसे

सुनकर राजा दशरथ मूर्छित हो जाते हैं।

तृतीय सर्ग में राम को वनवास तथा भरत को राज्य दिये जाने का समाचार जब लक्ष्मण सुनते हैं तो वे क्रोधित हो कैकेई के प्रति परुष शब्दों का प्रयोग करते है। अंततः राम के समझाने पर वे शान्त हो (दोनों लोग) माता कौशल्या के पास पहुँचते हैं।

चतुर्थ सर्ग में कौशल्या को राम से ही उनके वनवास जाने का समाचार मिलता है। वे कुछ काल के लिए मूर्छित हो जाती हैं, फिर चैतन्य होने पर कैकेई से राम को वनवास न भेजने के लिए आग्रह करती हैं। इसके विपरीत सुमित्रा का क्षत्राणी रूप प्रबल है, जिसे बड़ी युक्ति से राम शांत करते हैं। अंत में सीता और लक्ष्मण राम के साथ वन जाने के लिए तैयार होते हैं। इस प्रकार 'साकेत' के आरम्भिक चारों सर्ग अयोध्या से ही पूर्णतः संपृक्त हैं।

पंचम सर्ग में मंत्री सुमंत्र के साथ राम, लक्ष्मण और सीता वन के लिए जब प्रस्थान करते हैं तो जनता भी उनके साथ चल पड़ती है, जिसे राम समझा-बुझाकर किसी प्रकार लौटाते हैं, फिर वहाँ से चित्रकूट पहुँचकर लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णकुटी में निवास करते हैं। राम के कारण यह सर्ग भी साकेतमय है।[१]

षष्ठ सर्ग में विरह-विदग्धा ऊर्मिला की करुण दशा का उल्लेख करता हुआ कवि कौशल्या एवं सुमित्रा की दयनीय दशा पर भी दृष्टिपात करता है। सुमंत्र के अकेले लौटने पर हताश राजा दशरथ का निधन हो जाता है। सारी अयोध्या शोक में डूब जाती है।

सप्तम सर्ग में भरत और शत्रुघ्न ननिहाल से अयोघ्या आते हैं। पिता के स्वर्गवास का समाचार पाकर वे अत्यन्त दुखी होते हैं। राम-वनवास और वह भी भरत के कारण, यह समाचार सुनकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। क्रोधातुर भरत कैकेई के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा कौशल्या के पास पहुँचकर क्षमा-याचना करते हैं; फिर राजा दशरथ की अंत्येष्टि की जाती है।

---

(१) देखिए – साकेत ५/१३५

अष्टम सर्ग में चित्रकूट में रम रहे सीताराम के हर्षोल्लास की मनोरम झाँकी के साथ ही अयोध्यावासियों का वहाँ पहुँचना वर्णित है। भरत का भक्तिमय निःस्वार्थ व्यवहार देखकर लक्ष्मण चकित होते हैं। कैकेई सार्वजनिक रूप से अपना दोष स्वीकार करती हुई राम से अयोध्या लौटने का आग्रह करती हैं, किन्तु राम पिता के वचन देने का ध्यान कर अयोध्या लौटना अनुचित मानते हैं। सीता के प्रयास से लक्ष्मण और ऊर्मिला की भेंट पर्णकुटी में होती है। दोनों ही अत्यन्त भाव विगलित होते हैं, फिर भी कर्तव्य-पालन के प्रति दोनों संकल्पबद्ध हैं।

नवम सर्ग ऊर्मिला की चौदह वर्षीय विरह-व्यथा पर आधारित है। इसी प्रकार दशम सर्ग में भी ऊर्मिला-विरहानुभूति की प्रधानता है। इसी सर्ग में ऊर्मिला अपनी बहनों एवं रामादिक चारों भाइयों के बाल्यकाल से लेकर विवाह काल तक का वृत्तान्त सरयू को सुनाती है। इस प्रकार ऊर्मिला साकेत में रहते हुए दोनों परिवारों के सुखमय अतीत का उल्लेख करती है।

एकादश सर्ग गुप्त जी की अनेक मौलिक उद्‌भावनाओं को अपने में समेटे है। इस सर्ग की कथा सूच्य है। भरत एवं माण्डवी का त्याग और वैराग्यपूर्ण जीवन मनोहारी है। इसमें तुलसी के रामचरितमानस' के अरण्य किष्किंधा और सुन्दरकांड के साथ ही साथ लंकाकांड में लक्ष्मण के शक्ति लगने तक की कथा को समेटा गया है। इस काण्ड की एक मौलिक उद्‌भावना यह है कि हनुमान हिमालय से संजीवनी बूटी लाने नहीं जाते; बल्कि उन्हें अयोध्या में ही भरत प्रदान कर देते हैं जिसे पाकर वे लंका लौट पड़ते हैं।

द्वादश सर्ग में सीता-हरण और युद्ध-भूमि पर लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार सुनकर अयोध्यावासियों का विचलित होना वर्णित है। यह वर्णन अत्यंत सजीव, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है। सारी अयोध्या लक्ष्मण के मूर्छित होने का समाचार सुनकर लंका पहुँचकर रावण से युद्ध करना चाहती है। विरहिणी ऊर्मिला भी क्षत्राणी का वेश धारण कर लंका जाने के लिए व्यग्र है। सीता को रावण के बंदीगृह से मुक्त कराना सभी का एकमात्र लक्ष्य है। हनुमान को संजीवनी बूटी भरत के पास ही

उपलब्ध हो जाती है। उत्तेजित अयोध्यावासियों को शान्त करने हेतु गुरूवशिष्ठ का आगमन होता है। महर्षि वशिष्ठ अपने तपबल से समस्त साकेतवासियों को दिव्य-दृष्टि प्रदानकर राम-रावण-युद्ध का और उसमें विजयी होते राम का साक्षात् दर्शन कराते है। सभी मेघनाद और रावण का वध तथा सीता का बंदीगृह से मुक्त होना देखते हैं। तदनन्तर समग्र रामदल अयोध्या लौटता है, जहाँ संतप्त ऊर्मिला की चौदह वर्षों बाद लक्ष्मण से भेंट होती है। इस सर्ग में मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता के साथ ही साथ कवि की राष्ट्रीय भावना का अच्छा परिचय मिलता है। सीता मानों भारत माता के रूप मे उपस्थित हुई हैं। महर्षि वशिष्ठ द्वारा साकेतवासियों को दी गई दिव्य-दृष्टि की प्रेरणा कवि गुप्त को 'श्रीमद्भगवद्गीता' या 'महाभारत' से प्राप्त हुई है; क्योंकि महाभारत में अंधे धृतराष्ट्र को राजमहल में बैठे-बैठे युद्ध-भूमि का आँखों देखा हाल संजय बताते हैं। संजय को यह दिव्य-दृष्टि महर्षि वेदव्यास ने अपने तपबल से प्रदान की थी।

आलोच्य काव्य के बारहों सर्गो के कथानक की संक्षिप्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि लगभग सभी सर्गों में किसी न किसी रूप में साकेत विद्यमान है। रामकथा के स्वाभाविक विकास को बाधित कर उसे मनोनुकूल प्रस्तुत करने का मूल कारण विवेच्य काव्य के 'साकेत' नामकरण का औचित्य प्रतिपादित करना रहा है। ऐसा करने में गुप्त जी जहाँ सफल हुए हैं, वहीं प्रख्यात रामकथा को तोड़-मरोड़कर मनोनुकूल प्रस्तुत करने से उसका सरिता जैसा नैसर्गिक रूप बाधित हुआ है।

साकेत नामकरण का औचित्य सिद्ध करने के लिए गुप्त जी ने विवेच्य प्रबंधकाव्य के किसी भी सर्ग का कोई नाम नहीं दिया; क्योंकि यदि ऐसा वे करते तो 'साकेत' से उन्हें दूर जाना पड़ता। गोस्वामी जी ने राम को मनाने के लिए चित्रकूट गये भरत से सम्बन्धित सारे वृत्तान्त को अयोध्याकाण्ड के अंतर्गत ही लिया है। इस प्रकार गुप्त जी ने गोस्वामी जी से प्रेरणा लेकर ही साकेत से बाहर के वृत्तांत को भी साकेत में समाहित कर लिया है।

साकेत का वस्तु-विधान

साकेत के कथा-विन्यास पर गुप्त जी के प्रिय काव्य 'मेघनाद वध' का विशेष प्रभाव है। गुप्त जी ने साकेत से पूर्व माइकेल मधुसूदन दत्त के इस बंगला काव्य का हिन्दी काव्यानुवाद 'मधुप' नाम से किया था, जो इस काव्य से उनके विशेष प्रभावित होने का सहज प्रमाण है। इस प्रभाव के फलस्वरूप ही 'साकेत' के उत्तरार्द्ध के अनेक सर्गों की कथा का वैसा ही दुर्दम प्रवाह दृष्टिगत होता है।

'साकेत' के बारह सर्गों में विभक्त रामकथा का अनुपात ठीक नहीं है; उसे सुगठित, सुव्यवस्थित, सुडौल और सुन्दर नहीं कहा जा सकता। जैसे किसी व्यक्ति के शरीर का कोई अंग बड़ा और कोई छोटा हो जाये तो वह व्यक्ति की असुन्दरता या कुरूपता का कारण बनता है। ठीक वैसी ही स्थिति साकेत के वस्तु विधान या कथानक की है।

ऐसी दशा में 'साकेत' में आयी रामकथा की गति अत्यन्त विषम है। काव्य के आरम्भ में कथा अत्यधिक मंथर है, मध्य में (नवम सर्ग में) वह स्थिर सी हो गयी है तथा अन्त में बरसाती नदी की भाँति उसमें दुर्दमनीय प्रवाह है। सभी चरित्र आते हैं, पर अभिव्यक्ति और कार्यकलाप द्वारा वे अपनी कोई विशेष छवि बना नहीं पाते। निःसन्देह स्पष्टतः कथागत तीव्र प्रवाह के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो सका। जैसे कवि गुप्त जी के पास इसके लिए कोई समय ही नहीं है। इस प्रकार साकेत का कथा-विन्यास प्रबन्धात्मक या महाकाव्य के कथा-प्रवाह के पूर्णतः अनुकूल नहीं है। यहाँ आकर कवि अयोध्या और लंका दोनों स्थानों के 'विराट दृश्यों की श्रृंखला' को प्रस्तुत करने के लिए अधीर प्रतीत होता है।

'साकेत' का कथा–विन्यास असहज है। उसमें नदी का जैसा स्वाभाविक विकास नहीं, अपितु कवि ने रामकथा को मनोनुकूल तोड़ा-मरोड़ा

एवं उसे आगे-पीछे किया है; ताकि आलोच्य काव्य के नामकरण का औचित्य सिद्ध हो सके। अनेक सर्गों में तो कथानक 'सूच्य' है। उदाहरणार्थ दशम सर्ग में ऊर्मिला सरयू को सम्बोधित करते हुए अयोध्या में राम-लक्ष्मण प्रभृति भाइयों तथा जनकपुर में सीता-ऊर्मिला आदि बहनों के बाल्यकाल का जो वृत्तान्त प्रस्तुत करती है वह असहज है; नैसर्गिकता से रहित है। रामकथा को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत करने की प्रेरणा गुप्त जी ने ऐसी कतिपय रामायणों से ग्रहण की थी जिनमें रामादि का बाल्यकाल दशम सर्ग (काण्ड) में वर्णित था।[१] यह वृत्तान्त किसी भी पाठक अथवा श्रोता को नैसर्गिक अथवा सहज-स्वाभाविक नहीं लगेगा। इसी प्रकार मानस के अरण्यकाण्ड एवं किष्किंधाकाण्ड की कथा को व्यापारियों द्वारा शत्रुघ्न को बताना फिर शत्रुघ्न द्वारा भरत और माण्डवी को अवगत कराना सारा का सारा नितांत अस्वाभाविक है। 'साकेत' काव्य है न कि नाटक। सूच्य कथा का प्रयोग रंगमंच की सीमाओं को ध्यान में रखकर नाटक में होता है किसी महाकाव्य में नहीं। महाकाव्य की यदि कोई नयी कसौटी आधुनिकता को ध्यान में रखकर बनेगी तो उसमें भी ऐसी अस्वाभाविकता को शायद ही स्थान मिले।

'साकेत' का नवम सर्ग इस काव्य की आत्मा कहा जाता है। उसमें कथानक का अभाव है और यदि कुछ अंशो में है भी, तो वह नितांत गतिहीन है। ऐसा लगता है जैसे यह सर्ग 'रुदन सर्ग' हो। इसमें कथानक का कहीं कोई अता-पता नहीं लगता। इस सर्ग में वर्णित विरह-विवरण पाठक को संवेदना से भरता नहीं; अपितु सतही होने के कारण उसके सर से ऊपर निकल जाता है; जबकि कृति के अष्टम, एकादश एवं द्वादश सर्ग सुधी पाठकों पर अपनी छाप छोड़ते हैं, वे सुखात्मक और दुखात्मक अनुभूतियों याकि संवेदना से ओत–प्रोत होते हैं।

नवम सर्ग का विरह-वर्णन ठाले बैठे का वियोग-वर्णन सा प्रतीत होता है। 'साकेत' में वास्तविक रुदन न होकर उसका अक्षरशः कथन मात्र है। इससे न तो पाठक भाव-विभोर होता है और न उसमें मानवीय संवेदना ही जागृत होती है।

---

(१) दे०–मैथिलीशरण गुप्त–कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता –डॉ० उमाकांत पाठक, ३५

साकेत का नायकत्व

'साकेत' का नायक कौन ? यह विवाद का विषय है। कुछ विद्वान लक्ष्मण को इसलिए नायक मानते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में साकेत नायिका प्रधान काव्य है। उनका मत है कि सती-साध्वी, पति-परायणा भारतीय नारी यदि नायिका है तो उसका पति ही नायक होगा, अन्य कोई नहीं। इसके विपरीत कुछ विद्वानों की मान्यता है कि गुप्त जी ने बड़े साहस का परिचय देते हुए 'साकेत' महाकाव्य की नायिका ऊर्मिला को तथा नायक भरत को बनाया है। उनका तर्क है कि दोनों साधना रत हैं। बिना इस परिवर्तन के नवीन जीवन-योजना सम्भव न थी। अतः कवि ने अत्यन्त साहस पूर्वक इस क्षेत्र में प्रवेश किया और क्रान्तिकारी जीवन मूल्यों को अपनाकर "विचारों की दुनिया में अभिनव क्रान्ति की है।" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के कथनानुसार-"कवि (गुप्त) ने ऊर्मिला और भरत की साधनामयी जीवनी चित्रित की है। महाकाव्य की परम्परागत पद्धति के विरुद्ध उन्होंने साधु भरत को नायक और वियुक्ता ऊर्मिला को नायिका बनाया है।"[१]

कतिपय लोगों की अवधारणा है कि आलोच्य काव्य का नायक 'साकेत' है, वही पूरी घटनाओं के कारण पात्रों का आद्योपांत केन्द्र है। वही सारे वादों–विवादों का मूल कारण है और अन्ततः रामकथा की मंदाकिनी मंथर गति से वहीं पहुँचकर सबको सुख-शांति, समृद्धि और प्रेम प्रदान करती है। अतः जागरण प्रधान उस युग में कवि ने व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को महिमा-मण्डित कर सारे विवादों का समाधान तो प्रस्तुत

(१) आधुनिक साहित्य–आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ४४–४५

किया ही है, साथ ही साथ गुप्त जी का यह अभिनव एवं क्रान्तिकारी निर्णय भी है। जिस प्रकार प्रत्येक महापुरुष मध्यम मार्ग को अपनाकर सबकी भावनाओं को आदर देता है, उन्हें एक मंच पर लाता है, वैसे ही कवि ने महाकाव्य का नाम 'साकेत' देकर गुरु-आज्ञा की पूर्ति के साथ ही साथ अपनी वैष्णवी-भावना की भी तुष्टि की है। यही नहीं, नवजागरण के उस युग में कवि की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना तथा संवेदना का सम्यक् निर्वाह भी हुआ है। 'साकेत' को नायक मानने से प्रत्येक साकेतवासी को महत्व मिलता है और विवाद का स्वतः अन्त होता है।

इस बारह सर्गीय महाकाव्य के प्रथम, षष्ठ, नवम तथा दशम सर्गों में ऊर्मिला की प्रधानता है। तृतीय, चतुर्थ, पंचम और अष्टम सर्ग में राम का व्यक्तित्व सर्वोपरि है; अन्य सारे पात्र सहयोगी भूमिका निभाते हुए राम के नायकत्व को प्रतिपादित करते प्रतीत होते हैं। काव्य के सप्तम और एकादश सर्ग में रामानुरागी भरत का दायित्वबोध, त्याग-तपस्या तथा पराक्रम इत्यादि की परिव्याप्ति है। बारहवें सर्ग में शत्रुघ्न का वीरत्व-व्यंजक स्वरूप सर्वाधिक प्रभावशाली है। इसी प्रकार द्वितीय एवं अष्टम सर्ग में कैकेई का मनोविज्ञान की भाव-भूमि पर आधारित चरित्र आत्म-संताप या अपराध-बोध एवं उसकी सार्वजनिक स्वीकारोक्ति की ज्वाला में तपकर कुंदन सदृश निखर उठता है। वह सबकी संवेदना और सहानुभूति की भाजन बन जाती है। इस प्रकार कैकेयी लोक को समष्टि के हित में व्यष्टि को तिलांजलि देने का संदेश देती है। इतना चरित्र में परिवर्तन आने पर भी उसे नायिका या नायक नहीं कहा जा सकता। अंततः पाठक की दृष्टि ऊर्मिला और राम पर ही टिकती है। ऊर्मिला को नायिका बनाने की उत्कट अभिलाषा गुप्त जी में है; पर उस कल्पना-प्रसूत चरित्र में वे कहाँ तक और कब तक रंग भरते, क्योंकि राम के व्यक्तित्व के समक्ष वह टिक नहीं पाती, उसमें वैसी प्रभावोत्पादकता नहीं है। उसमें धीरोदात्त गुणों का अभाव है। उधर राम सबकी श्रद्धा के केन्द्र हैं; जबकि ऊर्मिला सबकी संवेदना की पात्र है।

अपनी मानस-पुत्री ऊर्मिला को नायिका बनाने के लिए कवि गुप्त आतुर थे। पति के चरित्र में भी अधिकाधिक रंग भरने के प्रयोजन से

उन्होंने लक्ष्मण के चारित्रिक विकास के भी अनेक अवसर निकाले हैं। साकेतकार ने ऊर्मिला और लक्ष्मण के चरित्र को उभारने हेतु कृति के अनेक सर्गों में स्थल-स्थल पर उन्हें विशेष महत्व देने का प्रयास किया है। इतना सब करने पर भी रामानुज 'एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का'[१] ही बनकर रह गये हैं।

नायकत्व को लेकर साकेत के विचारकों में प्रायः मत वैभिन्य है। कोई ऊर्मिला को नायक कहता है तो कोई लक्ष्मण को, कोई भरत को तो कोई राम को। कतिपय विचारक तो ऐसे हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण 'साकेत' को उसका नायक माना है। जहाँ नायक की अनिश्चितता हो, वहाँ नेतृत्व अनिश्चित होता है। नेतृत्व की अनिश्चितता उद्देश्य की अनिश्चितता का स्वतः आधार बनती है।

अंततः वैष्णवी संस्कार प्रधान कवि पुनः आदर्श-चरित्र राम की ओर मुड़ता है। प्रभु उसकी अभिलाषा की पूर्ति करते हैं तथा अपने भक्त को धर्म-संकट से याकि अनिश्चय की स्थिति से उबारते हैं। फलतः 'साकेत' उसी प्रकार राम का 'नगरावतार' है जैसे तुलसी का 'मानस' भगवान राम का ग्रंथावतार है।

'साकेत' की पहचान राम से है। राम की पहचान साकेत से नहीं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी ऐसा ही विचार प्रतिपादित करते हुए कहा हैः–

जहँ राम तहँ सबुइ समाजू।
बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।[२]

तुलसी से प्रभावित होकर ही साकेतकार का भी कहना है :–

सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा,
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।....

जहाँ हमारे राम, वहीं हम जायेंगे।[३]
वन में ही नव-नगर-निवास बनायेंगे।.......

---

(१) साकेत–१/३८
(२) साकेत–२/८४/६ (२) साकेत– ५/१२७ (३) साकेत–५/१३५

स्वर्गोपरि साकेत राम का धाम तू,
रक्षित रख निज अयोध्या नाम तू।[1]

अभिप्राय यह है कि गुप्त जी की दृष्टि में भी साकेत का महत्व राम के कारण है। इसीलिए वास्तव में वही इस महाकाव्य के नायक ही नहीं; अपितु महानायक हैं। इस परिप्रेक्ष्य में कवि गुप्त द्वारा गाँधी जी को लिखा गया पत्र प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत है–

"............रामचरितमानस के सीताराम साकेत में नायकों के भी नायक (महानायक) और सबके शिक्षक अथवा शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस नाट्य–लीला में जितने पात्र हैं, सीताराम ही सबके सूत्रधार हैं। ....साकेत में सीता ही ऊर्मिला को आत्मविश्वास की शिक्षा देती हैं।"[2]

गुप्त जी की आन्तरिक अभिलाषा थी कि वे अपने इष्टदेव पर एक ऐसे महाकाव्य की रचना करें; जो उनके जीवन की सर्वोत्तम कृति हो और उसमें वे अपने इष्टदेव सीताराम को चरित्र-नायक के रूप में प्रस्तुत करें। साकेत के निवेदन में गुप्त जी द्वारा व्यक्त इस प्रकार के विचार स्वतः इस बात के प्रमाण हैं कि वे साकेत का नायक सच्चे हृदय से राम को ही बनाना चाहते थे और वास्तव में उन्होंने वैसा किया भी है। कतिपय विद्वानों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के नियमानुसार लक्ष्मण को नायक कहा है; जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि उनके तर्क पर गुप्तजी की भावना भारी पड़ती है। अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि साकेत महाकाव्य के नायक और कोई न होकर गुप्त जी के इष्टदेव श्री राम ही हैं।

महाकाव्य में कोई एक महच्चरित्र होता है जिसका व्यक्तित्त्व सम्पूर्ण पात्रों के आकर्षण का केन्द्र बनता है। उसका आचरण आदर्श-प्रधान एवं अनुकरणीय होता है। साकेत में सर्वाधिक महच्चरित्र राम का है। सब पर उन्हीं का व्यक्तित्व प्रभावी है। समस्त घटनाओं के संचालक राम हैं। अपने आराध्यदेव राम को ही दृष्टि में रखकर गुप्त जी ने इस काव्य को रचा भी था। वैसे आचार्य द्विवेदी जी की प्रेरणा से उपेक्षित ऊर्मिला को भी गुप्त जी ने गौरव-गरिमा प्रदान कर अपनी उदार नारी-भावना व्यक्त की है।

(१) साकेत–५/१३५ (२) मै०श० गुप्त अभि०ग्रंथ– डॉ० अग्रवाल, ३४२

साकेत की ऊर्मिला

हिन्दी काव्य में नारी वर्ग के प्रति जितनी सहानुभूति और संवेदना मैथिलीशरण गुप्त ने व्यक्त की है उतनी अन्य किसी कवि ने नहीं। वैसे यह अवश्य है कि प्रसाद, पन्त तथा निराला प्रभृति कवियों के काव्य में भी नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण की व्याप्ति है; किन्तु परिमाण (मात्रा) एवं प्रबन्धात्मक दृष्टि से हिन्दी का कोई भी कवि गुप्त जी की समता नहीं कर पाता। उनकी साकेत, यशोधरा, द्वापर एवं विष्णुप्रिया जैसी कृतियों में नारी की महानता और उदात्तता को नव्य तथा भव्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। गुप्त जी द्वारा साकेत-सृजन का उद्देश्य ही 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' को दूर करना रहा है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' लेख को पढ़कर 'सरस्वती' पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक युग-प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक से अपनी पत्रिका में एक लेख निकाला, जिसे उनके प्रिय शिष्य मैथिलीशरण ने पढ़ा और 'उपेक्षिता ऊर्मिला' पर काव्य-सृष्टि का संकल्प किया। 'साकेत' इसी संकल्प का मूर्त रूप है; जिसमें त्यागमयी, अनुरागमयी, उपेक्षिता ऊर्मिला का उदार चरित्र संपूर्ण उत्कर्ष के साथ चित्रित हुआ है।

'साकेत' की ऊर्मिला गुप्त जी की निजी अर्थात् मौलिक सृष्टि है। उसे राष्ट्रकवि की 'मानस-पुत्री' कहें तो असंगत न होगा। ऊर्मिला के चरित्र-सृष्टि हेतु गुप्त जी माइकेल मधुसूदनदत्त कृत **'मेघनाद वध'** की नायिका प्रमिला से विशेष प्रभावित हैं। ऊर्मिला के हृदय की कोमलता यदि माइकेल कृत **'ब्रजांगना'** से प्रभावित है तो उसका वीरांगना स्वरूप मधुसूदनदत्त कृत **'वीरांगना'** तथा **'मेघनाद वध'** की नायिका प्रमिला के प्रभाव का परिणाम है। जिस प्रकार पुत्री को ससुराल में दुखी पाकर पिता का हृदय विचलित हो उठता है, ठीक वैसी ही मानसिकता ऊर्मिला की चरित्र-सृष्टि में गुप्त जी की रही है। तभी उनकी सम्पूर्ण सहानुभूति ऊर्मिला के साथ है। 'साकेत' के सभी प्रमुख पात्रों तथा घटनाओं से उसका सीधा सम्बन्ध है। सभी उसकी अद्‌भुत त्याग-परायणता से अभिभूत हैं।

प्रत्येक पात्र मुक्त कण्ठ से उसकी सराहना करता है। महाकाव्य की हर घटना ने उसकी पावनता तथा महानता को निखारा है। पुंजीभूत सुखों में पत्नी तथा पति के सम्पूर्ण प्रेम पर एकाधिकार रखते हुए भी, उसने भारतीय संस्कृति के जिन लोकमंगलकारी मूल्यों और आदर्शों के लिए स्वेच्छा से दुख को वरण किया, ऐसे अप्रतिम चरित्र की सृष्टि गुप्त जी जैसे भारतीय संस्कृति के अमर गायक की विलक्षण कल्पना से ही सम्भव थी। तभीं साकेतकार ने अपने प्रभु राम से उसकी सराहना कराते हुए कहलाया है:–

तूने तो सहधर्मचारिणी से भी ऊपर,
धर्मस्थापन किया भाग्यशालिनि, इस भू पर।[१]

पति के साथ वन-प्रस्थान, सीता के लिए नन्दन वन के सदृश ऐश्वर्ययुक्त प्रतीत हुआ; पर भ्रातृ-प्रेम के आदर्श की स्थापना के लिए व्यग्र लक्ष्मण अपनी नव विवाहिता को वहीं छोड़कर चल पड़ते हैं। अनुजा की विवशता और पीड़ा की असह्य अनुभूति की कल्पना कर सीता के संवेदनात्मक स्वर प्रत्येक सहृदय को अभिभूत करते हैं–

आज भाग्य है जो मेरा,
वह भी हुआ न हा, तेरा![२]

गुप्त जी की ऊर्मिला–जिसका आविर्भाव मिथिला में और जिसके उदात्त चरित्र का विकास अयोध्या में हुआ-जो समय के घात-प्रतिघातों को सहन करके कुंदन के सदृश बहुमूल्य एवं भास्वर बनी, गुप्त जी की अभिनव सृष्टि है। नारी की उदात्तता के जिस चरम रूप की कल्पना कृतिकार के मन में रही होगी, ऊर्मिला उसी की अनुकृति है। आचार्यों ने 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' कहा है। विधाता संसार की सृष्टि करता है, और कवि किसी कृति, उसके चरित्र तथा घटनाओं की। दोनों का उद्देश्य लोकहिताय होता है। गुप्त जी के समय तक कवियों द्वारा जिन आदर्श नारी-चरित्रों की अवतारणा की गयी थी; ऊर्मिला उन सबसे नितान्त भिन्न और मौलिक सृष्टि है।

नारी का सौन्दर्य वाह्य न होकर आभ्यान्तरिक होता है। साकेत के प्रत्येक सर्ग में ऊर्मिला के उत्तरोत्तर सँवरते हुए नूतन रूप को देखा जा

---

(१) साकेत –१२/३६३ (२) ४/१२१

सकता है। पाठक में औत्सुक्य जगाने और उसकी चारित्रिक विशिष्टताओं को उभारने से सम्बन्धित छायावादी शैली में गुप्त जी की उक्ति ध्यातव्य है:–

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही ऊर्मिला।
शील–सौरभ की तरंगे आ रहीं......,
दिव्य–भाव भवाब्धि में हैं ला रहीं।।[1]

ऊर्मिला के दाम्पत्य जीवन में पूंजीभूत सुख, पति-पत्नी का यह रागात्मक सम्बन्ध पारस्परिक समता पर आधारित है। वह पति की दासी नहीं अपितु दिव्य गुणों के कारण लक्ष्मण की दृष्टि में देवी–स्वरूपा है। लक्ष्मण भी दास या सेवक न होकर उसके लिए 'देव-तुल्य हैं। पति-पत्नी सम्बन्धों की इसी आदर्श-भावना से सम्बन्धित ऊर्मिला की निम्नांकित उक्ति द्रष्टव्य है:–

देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
और देवी ही मुझे रक्खो अहो![2]

ऊर्मिला के चरित्र द्वारा गुप्त जी ने नवजागरण या सुधार के उस युग में अपनी आदर्श नारी-भावना को मूर्त एवं जीवन्त रूप दिया है। ऊर्मिला की प्रत्येक उक्ति और कार्य-व्यापार में उसका व्यक्तित्व निखरता और सँवरता चित्रित हुआ है। उसका प्रेम पति के कर्तव्य का बाधक न होकर सदैव साधक है। उसने जिस आत्मसंयम या नियंत्रण का परिचय दिया, वह दूसरे के लिए अनुकरणीय आदर्श है। इस परिप्रेक्ष्य में चित्रकूट का वह प्रसंग उल्लेखनीय है, जब सीता ने ऊर्मिला-लक्ष्मण की भेंट का उपक्रम किया। बहनों को वनोपहार देने के बहाने सीता लक्ष्मण से कुटी में जाकर तालसम्पुटक (दोना) लाने को कहती हैं। वे जैसे ही कुटी में प्रवेश करते हैं वहाँ ऊर्मिला को देखकर अवाक् रह जाते हैं। उन्हें हड़बड़ाया या विचलित देख ऊर्मिला स्वयं पति को आश्वस्त करती है:–

मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,

---

(१) साकेत –१/२५ (२) साकेत –१/२७ (३) साकेत –८/२०६

मैं बाँध न लूँगी, तुम्हें तजो भय भारी।[3]

शक्ति नारी स्वरूपा है। पुरुष को जब किसी (अपनी) नारी से कर्तव्य–पालन की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिलता है तो उसका कर्तव्य–पथ जगमगा उठता है। ऊर्मिला से कर्तव्य पालन की स्वीकृति पाकर लक्ष्मण भाव–विह्वल हो कह पड़ते हैं :–

वन में तनिक तपस्या करके,
बनने दो मुझको निज योग्य।
भाभी की भगिनी, तुम मेरे
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।।[1]

प्रिय से आकस्मिक विछोह तथा पुनः संयोग की सारी आशाओं पर (चित्रकूट में आकर) हुए तुषारापात के बावजूद मोह के समस्त भावों पर अर्गला लगाती हुई ऊर्मिला मन-मसोस कर कर्तव्य को वरीयता देना ही उचित समझती है:–

हा स्वामी ! कहना था क्या–क्या
कह न सकी, कर्मों का दोष !
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है सन्तोष ![2]

लक्ष्मण के विरह में उन्मत्त ऊर्मिला कभी-कभी पति को आने के लिए पुकार उठती है; किन्तु मानसिक सन्तुलन की दशा में वह स्वप्न में भी यह नहीं चाहती कि उसका प्रिय कर्तव्य-च्युत हो। यदि कभी स्वप्न में प्रिय के दर्शन हो जाते हैं तो उस समय भी उसे कर्तव्य का स्मरण हो आता है और सुप्तावस्था में ही वह पति को कर्तव्य पालन के लिए पुनः लौट जाने के लिए प्रेरित करती है।

पति लक्ष्मण आराध्य-युग्म की निरन्तर सेवा में संलग्न रहें। ऊर्मिला का स्मरण कर उनका ध्यान कभी विचलित न हो, इसके लिए उसका कहना है कि दोनों जब सो जायें तो अवकाश के उन क्षणों में निरन्तर जागरण का व्रत कर रहे प्रिय जब मेरा स्मरण करेंगे तो यहाँ साकेत में

---

(१) साकेत – ८/२०६ए (२) साकेत– ८/२०६,

उसे हिचकियाँ आयेंगी और इस प्रकार दोनों का हार्दिक मिलन होता रहेगा। यथा :–

आराध्य–युग्म के सोने पर,
निस्तब्ध निशा के होने पर।
तुम याद करोगे मुझे जभी
मैं समझूँगी पा चुकी सभी।[१]

साकेत जिस संक्राति और नव जागरण काल की सृष्टि है, ऊर्मिला का उदात्त चरित्र उन्हीं परिस्थितियों की देन है। तभी उसके जीवन में आये विरह के दुर्वह भार ने उसे नयी दृष्टि दी है। इस दुख ने उसकी निजी अस्मिता और महत्ता प्रतिपादित की है। दुःख से ऊर्मिला को अपने साथ समाज को लेकर चलने तथा उसके दुख-दर्द से द्रवीभूत होने की 'नयी किरन' (दृष्टि) प्राप्त हुई है। जीवन में केवल सुख ही सुख नहीं; अपितु दुख और दायित्व भी हैं। दुख जीवन के वास्तविक रूप के दर्शन कराता है। तभी तो ऊर्मिला का कहना है :–

जहाँ विरह ने गार दिया है, वहीं किया उपकार भी।
सुध-बुध हर ली, किन्तु दिया है काल-ज्ञान विचार भी।[२]

पुरबालाओं के लिए पाठशाला खुलवाने का विचार अथवा सम्पूर्ण राज्य की अवस्था एवं व्यवस्था के प्रति ऊर्मिला का ध्यान जाना उसके दृष्टिकोण की व्यापकता का प्रमाण है। उसमें यह व्यापक दृष्टिकोण इस विरह काल में ही आया है तभी तो वह वेदना को अपने लिए अत्यंत भली मानती है।[३]

लंका में पति के मूर्छित होने का समाचार सुन ऊर्मिला अपने को राजपरिवार की मर्यादा में बाँध नहीं पाती। अतः वीरांगना का रूप धारण कर वह अत्याचारियों से स्वयं संघर्ष के लिए जिस प्रकार सन्नद्ध होती है, उसका वह तेजस्वी, ओजस्वी; किन्तु मनस्वी एवं यशस्वी रूप दर्शनीय है:–

माथे का सिन्दूर सजग अंगार सदृश था,
प्रथमातप–सा पुण्य मात्र यद्यपि वह कृश था।

---

(१) साकेत ६/२१३ (२) साकेत – ६/२२१ (३) साकेत– ६/२२०
(४) साकेत १२/३७६

बायाँ कर शत्रुघ्न पृष्ठ पर कंठ निकट था,
दायें कर में स्थूल किरण सा शूल विकट था।[४]

ऊर्मिला युद्ध के लिए अयोध्या से लंका जाने वाले सैनिकों के साथ स्वयं इसलिए भी जाना चाहती है ताकि वह घायल वीरों की सेवा कर सके। रण–प्रयाण के लिए सन्नद्ध वीरों को शत्रुघ्न द्वारा उत्तेजित कर यह कहने पर कि–'सोने की उस शत्रुपुरी लंका को लूटो।[१] के आदर्श-विरुद्ध इस आदेश का ऊर्मिला तत्काल खण्डन करती है। सत्कर्म, आत्मगौरव तथा अपनी संस्कृति की आन-बान एवं शान के माध्यम से गुप्त जी ने तत्कालीन परतंत्रता के स्पष्ट संकेत देकर समग्र देशवासियों को सजग, सतर्क और सचेष्ट किया है।

पूर्ववर्ती रामकाव्यों में राम के साथ लक्ष्मण के वनगमन पर कवियों का ऊर्मिला पर ध्यान न देना मनोवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। समस्त अनुरोधों एवं अवरोधों को हटाकर प्रिय के कर्तव्य-पथ को प्रशस्त करने वाली ऊर्मिला की ओर सहृदय कवि गुप्त जी का ध्यान जाना सर्वथा स्वाभाविक था। इस प्रकार उन्होंने रामकथा की प्रासंगिकता प्रतिपादित कर अपनी विराट राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है।

साकेत के लक्ष्मण

'साकेत' नायिका प्रधान प्रबंध-काव्य है। यह नायिका कोई और न होकर कवि गुप्त की मानस-पुत्री ऊर्मिला है; जिसके व्यक्तित्व-कर्तृत्व की सम्पूर्ण सृष्टि कवि की मानसिक उपज है। लक्ष्मण उसके पति हैं। अतः नायिका ऊर्मिला के वे ही अनन्य नायक हैं।

गुप्त जी ने 'साकेत' के 'आत्म निवेदन' में आत्मा की जो बात कही है, वह यह है कि उनकी इच्छा थी कि 'साकेत' उनके जीवन की अंतिम

---

(१) १ साकेत – १२/३७६

कृति हो और उसमें वे अपने आराध्यदेव राम के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत कर अपनी अविचल राम-भक्ति का परिचय दें; किन्तु वे चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाये हैं। उनकी चाहना (इच्छा) तो यह थी कि वे राम को नायक बनाकर काव्य-रचना करें; उधर गुरु-आज्ञा थी कि गुप्त जी ऊर्मिला पर काव्य रचना करके 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' के आक्षेप या दोष का निवारण करें। इस प्रकार आन्तरिक अभिलाषा और गुरु की आज्ञा दोनों की पूर्ति का प्रयास है 'साकेत'। अभिप्राय यह है कि कवि दो नावों पर सवार हुआ है। इसी कारण वह सही अर्थों में अपना लक्ष्य नही प्राप्त कर सका है। गुप्त जी के 'साकेत' की पहचान ऊर्मिला के आधार पर है, राम के कारण नहीं। ऊर्मिला को कवि ने इतना अधिक महत्व दिया है कि उसके समक्ष राम का व्यक्तित्व ही नहीं; अपितु ऊर्मिला के पति लक्ष्मण का व्यक्तित्व भी प्रभाहीन हो गया है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में गुप्त जी ने पति-पत्नी के सम्बन्धों में समानता की जो वकालत की है; उसमें कहने को तो समानता है; पर वास्तव में लक्ष्मण के व्यक्तित्व की अपेक्षा ऊर्मिला के व्यक्तित्व को गुप्त जी ने अधिक महत्व दिया है, उसे उठाया है। इन दोनों चरित्रों में पुत्री और दामाद का जैसा अन्तर है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में **'देव होकर तुम सदा मेरे रहो,** और देवी ही मुझे रखो अहो।'[१] कहकर पति-पत्नी के सम्बन्धों में जिस समानता और समरसता की बात गुप्त जी ने प्रतिपादित की है; उसका सम्यक् निर्वाह वे स्वयं 'साकेत' में नहीं कर सके हैं। ऊर्मिला-चरित्र को निखारने में वे विशेष समर्पित एवं संलग्न दिखायी देते हैं, इसीलिए लक्ष्मण का चरित्र ऊर्मिला एवं राम दोनों के समक्ष प्रभारिक्त याकि प्रभावहीन सा हो गया है। ऊर्मिला उन्हें 'डॉमिनेट' करती प्रतीत होती है। लक्ष्मण की अपने सम्बन्ध में उक्ति **'एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का'**[२] उन पर पूर्णतः चरितार्थ होती लगती है। साकेत के नायक लक्ष्मण वह गौरवपूर्ण पद भी नहीं पा सके हैं जो तुलसी ने उन्हें मानस में प्रदान किया है; जबकि

(१) १ साकेत – १/३० (२) १/३८

गुप्त जी से इसकी अपेक्षा थी। ऊर्मिला का पति होने के कारण लक्ष्मण को पत्नी ऊर्मिला के बराबर महत्व देना कवि के लिए आवश्यक था। इसके लिये कवि ने अपनी शक्तिभर प्रयत्न भी किया है। साकेत के लक्ष्मण में विद्यमान लौकिकता और सैनिक भाव की प्रबलता पर मधुसूदन कृत **'मेघनाद वध'** की अमिट छाप है। माइकेल ओज और तेज प्रधान कवि थे। लक्ष्मण का ओजस्वी स्वरूप 'मानस' के लक्ष्मण से कहीं अधिक मेघनाद वध के नायक मेघनाद से प्रभावित है। लक्ष्मण का चौदह वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन और निद्रा त्याग उनके महान व्यक्तित्व के दो अमिट प्रमाण हैं। 'साकेत' में लक्ष्मण को विशेष महत्व न मिलने की वास्तविकता यह है कि कवि गुप्त ने उनके साथ मित्रवत् व्यवहार किया है। इसीलिए उनसे वह डरा नहीं है; जबकि राम के समक्ष वह सदैव सहमा याकि डरा हुआ है। इस प्रकार कवि ने अपने परिवार में प्रचलित **'सख्य–रति–प्रधान राम–भक्ति का निर्वाह लक्ष्मण के साथ किया है।**[१] लक्ष्मण के व्यक्तित्व के साथ गुप्त जी द्वारा समुचित न्याय न कर पाने का एक अन्य मनोवैज्ञानिक कारण भी है। 'पंचवटी' में उन्होंने लक्ष्मण को जो विशेष महत्व दिया उसे 'साकेत' में वे पुनः स्थापित नहीं कर पाये; क्योंकि इस चरित्र के सम्बन्ध में उन्हें जितना कुछ कहना था, 'पंचवटी' में कह चुके थे। इस प्रकार वे सर्वथा चुक गये थे।

'साकेत' के कथानक और उसके चरित्रों की एक उल्लेखनीय दुर्बलता यह भी है कि वे सूच्य हैं। अधिकांशतः दूसरे लोग अपने कथनों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाते अथवा पात्र के चरित्र को उभारते, निखार लाते या रंग भरते दिखाई देते हैं; जबकि यह प्रवृत्ति उचित नहीं। लक्ष्मण का चरित्र देखा जाय तो इसी प्रवृत्ति का शिकार हुआ है।

'रामचरितमानस' और 'साकेत' में उतना ही अंतर है जितना तुलसी और मैथिलीशरण गुप्त में। एक वैरागी है दूसरा अनुरागी है; गृहस्थ है। एक सिद्ध है तो दूसरा साधक है। इसी कारण उनके उद्देश्यों में भी

(१) मै०श० गुप्त अभि०ग्रन्थ–डॉ० अग्रवाल,

भिन्नता है। सिद्ध पुरुष तुलसी ने सिद्धि के धाम राम को अपने काव्य का नायक बनाया है। इसके विपरीत मैथिलीशरण गुप्त ने साधक या तपस्यारत लक्ष्मण के महच्चरित्र की जो परिकल्पना 'पंचवटी' में की थी उसी का विस्तृत एवं पूर्ण रूप 'साकेत' में प्रस्तुत किया है। 'पंचवटी' और 'साकेत' के लक्ष्मण में उतना ही अन्तर है जितना छोटे फोटो और उसके बड़े रूप में।

लक्ष्मण शेषावतार हैं। उनके व्यक्तित्व में जो अमर्ष या क्रोध है वह शेषनाग का है। शेष से डरना तो समझ में आता है; पर शेषशायी से कवि गुप्त का डरना समझ से परे है। 'साकेत' की विचित्रता यह है कि उसका कवि सेवक से नहीं अपितु; उसके स्वामी से डरता है। 'मैथिली' की 'शरण' में रहकर भी **'मैथिलीपति' से भक्तकवि का डरना समझ में न आने वाली बात है**; फिर भी अपने औचित्य को तो कवि को स्थापित करना ही था।

जिस प्रकार परम्परागत रामकथा में राजा दशरथ ने राम को राजा बनाते–बनाते वनवासी बना दिया, उसी प्रकार 'साकेत' में गुप्त जी ने लक्ष्मण को महाकाव्य रूपी प्रदेश का राजा बनाते–बनाते वनवासी बना दिया है। 'साकेत' के कथानक की कल्पना में ही त्रुटि हो जाने से कवि इस वास्तविकता को भूल गया कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। विडम्बना यह है कि मैथिलीशरण जी ने एक म्यान (साकेत) में दो तलवारें (दो महच्चरित्रों) को रखा है। फलस्वरूप गुप्त जी दोनों में से किसी के साथ भी न्याय नहीं कर पाये हैं। लक्ष्मण महावीर हैं पर धीर नहीं। वे तपस्पृही हैं इसलिए गृही नहीं। महत् उद्देश्य को लेकर उनमें त्याग और बलिदान है, पर उनके जीवन का लक्ष्य राम की सेवा है। इस प्रकार लक्ष्मण पुरुषवेश में जीवन के एक आदर्श का जीवंत स्वरूप हैं। उनके व्यक्तित्व में तेजस्विता समाहित है। इसलिए वे अन्याय का सदैव ही प्रत्यक्ष विरोध करते हैं। 'साकेत' के लक्ष्मण में मधुरता और उग्रता दोनों का सामंजस्य है। इतना सब होते हुए भी लक्ष्मण का चरित्र राम के व्यक्तित्व के समक्ष प्रभाहीन है।

साकेत के राम

मैथिलीशरण जी की राम–भक्ति में सख्य भाव की प्रधानता थी। मित्रता समानता प्रधान होती है। इसीलिए साकेतकार के राम में तुलसी के राम जैसा ब्रह्मत्व पग-पग पर दिखाई नहीं देता; फिर भी साकेत में गुप्त जी राम के ब्रह्मत्व के समक्ष दबे या सहमें से प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि वे राम के ईश्वरत्व को यत्र-तत्र स्वीकारते या उल्लेख करते दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में उनके द्वारा गाँधी जी को लिखे गये एक पत्र का अंश उद्धृत करना असंगत न होगा :–

"सख्य भाव की उपासना में दीक्षित होते हुए भी मानस के राम के समीप मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता है।............इसलिए मुझे उनसे डर लगा रहता है। वह अभ्यस्त भय साकेत में भी नहीं छूटा और मुझे उन्हें 'प्रभु' कहते ही बना है।"[१]

साकेत में राम 'नायकों के भी नायक' और सबके शिक्षक अथवा शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। साकेतकार के हृदय में (वे) जप-जपाते हैं; पर साकेत में वे पाठ पढ़ाते हैं।"[२] इस प्रकार गुप्त जी उन्हें नायक के रूप में नहीं लाना चाहे हैं, बल्कि लक्ष्मण को नायक बनाकर उन्होंने तुलसी की उक्ति 'राम ते अधिक राम कर दासा' को चरितार्थ करना चाहा है; पर ऐसा चाह कर भी वे नहीं कर पाये हैं।[३]

इस प्रकार गुप्त जी के राम में भारतीय प्राचीन तत्त्व भी हैं और नूतन तत्त्व भी। प्राचीन और नवीन का यही सामंजस्य साकेत के राम की विलक्षणता है, विशेषता है। गुप्त जी के राम में युग-पुरुष महात्मा गाँधी की स्पष्ट झलक सर्वत्र विद्यमान है। स्पष्टतः साकेत पर गाँधीवाद का यह सबसे बड़ा प्रभाव है।

---

(१) साकेत के नवम सर्ग का काव्य-वैभव–डॉ० कन्हैयालाल सहल, १४२
(२) वही, १४५ (३) साकेत १/११८

गुप्त जी राम-भक्त हैं; पर उनके राम तुलसी की अपेक्षा वाल्मीकि के अधिक निकट हैं। वे पुरुषोत्तम हैं; नरोत्तम हैं। गुप्त जी के जहाँ वैष्णवी संस्कार प्रबल हो उठे हैं, वहीं जाने-अनजाने उन्होंने राम को परब्रह्म का अवतार या ईश्वर कहा है, अन्यथा उनके कवि को यह रूप वस्तुतः कहीं भी स्वीकार्य नहीं है। राम अवतारी हैं। यह विचार उनके वैष्णवी संस्कार ही स्वीकार करते हैं। यथा :–

असुर–शासन शिशिर मय हेमन्त है,
पर निकट ही रामराज्य वसन्त है।
पापियों का जान लो अब अन्त है,
भूमि पर प्रकटा अनादि–अनन्त है।[1]

निष्कर्षतः साकेत के राम का चरित्र जन सामान्य की भावभूमि पर आधारित है।

'साकेत' बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है। यह कालखण्ड भारतीय नवजागरण और स्वातन्त्र्य-चेतना का युग था। अतः साकेत में तुलसी की जैसी भावुकता को दरसा पाना कवि के लिए सम्भव न था, क्योंकि वह तुलसी की भाँति उस उँचाई पर पहुँचा हुआ भक्त नहीं। दूसरे उसके परिवार की रामोपासना में सख्य रति की प्रधानता रही है। इसके अलावा कवि गुप्त को युग-धर्म को भी ध्यान में रखते हुए चलना उचित प्रतीत हुआ। यही कारण है कि साकेत के राम तुलसी के राम से बहुत भिन्न हैं। इस परिप्रेक्ष्य में प्रो० (डॉ०) हरिकृष्ण अवस्थी का कथन अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है :–

"वाल्मीकि के राम महामानव हैं, महापुरुष हैं। तुलसी के राम ब्रह्म स्वरूप हैं। केशवदास के राम राजाराम हैं और मैथिलीशरण ने राम को वाल्मीकि के राम की भाँति ही महामानव बनाने का यत्न किया है; पर वे ऐसा भली-भाँति नहीं कर पाये। इस 'राम खुदैया' वाली मनः स्थिति के कारण ही न तो गुप्त जी राम को राम (ईश्वर) बना पाये हैं और न साकेत को महाकाव्य ही। साकेत का अधिकांश कथानक और चरित्र सूच्य हैं, इसलिए उनका नैसर्गिक विकास काव्य में नहीं दिखायी देता।"

---

(१) साकेत १/१८

रामकथा प्रधान काव्यों की संख्या अपरिमित है। रामकाव्य की इस अखण्ड परम्परा में जो गौरव–गरिमा महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त को प्राप्त हुई वह अन्य रचनाकारों के लिए दुर्लभ रही है।

'साकेत' के राम के चरित्रांकन में कवि द्विविधा ग्रस्त है। वह एक ओर तो आधुनिकता से अनुप्राणित है तो दूसरी ओर प्राचीन परम्परा से, पारिवारिक संस्कारों से और तुलसी से पूर्ण प्रभावित है। इसीलिए वह सम्पूर्ण काव्य में निश्चय–अनिश्चय के बीच में पड़ा दिखता है। उसकी द्विविधा ग्रस्त मनः स्थिति का आकलन ग्रंथ के आरम्भ से ही किया जा सकता है :–

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए, सभी कहीं नहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।।[१]

उपर्युक्त आरम्भिक दो पंक्तियाँ यदि आधुनिक युगबोध से प्रभावित हैं तो अंतिम दो पंक्तियाँ प्राचीन परम्परा, परिवेश अथवा संस्कारों से अनुप्राणित हैं। तुलसी के प्रभाव स्वरूप साकेत के राम भी अपने अवतार का या ईश्वरत्व का उद्‌घाटन करते हैं। राम का ऐसा आत्मकथ्य या आत्म स्वीकारोक्ति उल्लेखनीय है –

हम को लेकर ही अखिल विश्व की क्रीड़ा,
आनन्दमयी नित नई, प्रसव की पीड़ा।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
जो विकल, विवश बलहीन और शापित हैं।
सुख देने आया, दुःख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्‌य खेलने आया।[२]

'साकेत' स्थानवाची नाम होकर भी राम–महिमा से परे नहीं। वस्तुतः साकेत का गौरव रामचरित से ही है। अतः आलोच्य काव्य की समस्त घटनायें और कार्य अधिकांशतः राम के चरित्र के पूरक हैं।

---

(१) साकेत–प्रथम सर्ग से पूर्व (२) साकेत–८/२३२

साकेत पर मानस का प्रभाव

साहित्य के किसी भी अंग विशेष की उद्भावना एवं विकास में पुरातन का योग अवश्य होता है। वस्तुतः अपने उद्भव, अंगपुष्टि और विकास के लिए उसे कितनी ही दिशाओं में पूर्ववर्ती एवं समसामयिक साहित्य का ऋणभार ग्रहण करना होता है। नवीन से नवीन साहित्य अपने पूर्ववर्ती तथा तत्कालीन साहित्य की विषयवस्तु, विचारपरम्परा एवं भाषाशैली से जीवन-रस ग्रहण करता है। इस प्रकार परम्परा को आधार बनाकर साहित्यकार नवीनता की ओर उन्मुख होता है। धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़े हुए बाण को जितना पीछे खींचा जाता है, उतना ही वह आगे जाता है। द्विवेदीयुगीन प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त इस वास्तविकता से भलीभाँति परिचित थे। इसीलिए 'साकेत' की रचना करते समय उन्होंने रामकथा की संस्कृत ग्रन्थों से हिन्दी काव्यों तक चली आती हुई परम्परा का निर्वाह किया; साथ ही अनेक महत्वपूर्ण मौलिक उद्भावनायें कीं। यही कारण है कि साकेत में परम्परा और प्रयोग का सुन्दर सामंजस्य है।

भारतीय वाङ्मय में रामकथा-प्रधान काव्यों की सुदीर्घ परम्परा के अन्तर्गत जिन तीन कवियों को सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ; उनमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त के नाम सर्वोपरि हैं। वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में पहलेपहल राम का जो चरित्र चित्रित किया उसमें उन्हें महामानव, महापुरुष, नरश्रेष्ठ, नरोत्तम अथवा मर्यादा पुरूषोत्तम रूप में मुख्यतः स्थापित किया; जबकि गोस्वामी जी ने रामचरितमानस के अन्तर्गत राम का ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादित किया है। तुलसी को इस विचार की प्रेरणा 'अध्यात्म रामायण' से प्राप्त हुई थी। आधुनिक काल के शीर्षस्थ रामभक्त कवि मैथिलीशरण के राम काव्यों में

राम को ईश्वर के साथ-साथ महापुरुष या लोकनायक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

रामकथा के ईश्वरत्व के प्रति कवि की इस धारणा का आधार उसका वैष्णव परिवार में जन्म लेना था। गुप्त जी के पिता सेठ रामचरण सखी भाव वाले रामोपासक थे; जबकि कवि ने सख्य भाव के अन्तर्गत रामोपासना की दीक्षा ली थी; किन्तु उसका मन राम के प्रति सख्य भाव वाली भक्ति में न रमा और तुलसी कृत मानस के लगभग २५० बार निरन्तर पारायण के प्रभाव स्वरूप उसे राम को प्रभु रूप में स्वीकार करना ही पड़ा।[१] यही कारण है कि राम और सीता के प्रति गुप्त जी कहीं भी बराबरी वाला सख्य भाव नहीं दर्शा सके; बल्कि उनके समक्ष उन्हें सदैव मर्यादित ही रहना पड़ा। इसके विपरीत लक्ष्मण के प्रति कवि की भावना सर्वत्र सख्य भाव वाली रही। इस प्रकार संस्कृत तथा हिन्दी रामकाव्यों के होते हुए भी मैथिलीशरण तुलसी के मानस से बहुविधि अनुप्राणित हैं, जिसका कारण 'मानस' का गुप्त जी के वैष्णवी संस्कारों के सर्वाधिक निकट होना था।

मैथिलीशरण गुप्त का कविता काल भारतीय नव जागरण का काल था। वे राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित होकर ही काव्य क्षेत्र में उतरे थे। इसीलिए उनके काव्यों के राम सर्वत्र युगधर्म के अनुसार चित्रित अथवा प्रस्तुत हुए हैं; तभी गुप्त जी के राम में महापुरुष, महात्मा या महामानव वाले संस्कारों की प्रधानता है। कवि राष्ट्र नायक महात्मा गाँधी से अत्यधिक प्रभावित था। फलस्वरूप उसके राम में गाँधी के व्यक्तित्व की सर्वत्र झलक मिलती है। इस प्रकार गुप्त जी के राम ईश्वर भी हैं और महामानव भी। उनका ईश्वरत्व कवि को विरासत में प्राप्त वैष्णवी संस्कारों तथा गोस्वामी तुलसीदास कृत ''मानस'' की देन है। इसके विपरीत राम का महापुरुष रूप गाँधी के व्यक्तित्व एवं चिन्तन धारा से अनुप्राणित है।

साकेत की विषयवस्तु, चरित्र चित्रण 'राम भक्ति-भावना, विचार परम्परा तथा रस इत्यादि के लिए कवि कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप में तुलसी कृत मानस से प्रेरित और प्रभावित है। सीता-परित्याग तथा लव-कुश से सम्बन्धित कथा को मानसकार की भाँति गुप्त जी ने भी 'साकेत'

(१) दे०—मैथिलीशरण गुप्तः व्यक्ति और काव्य—डॉ० कमलाकांत पाठक, ४०७

में स्थान नहीं दिया है। 'साकेत' महाकाव्य के नामकरण को दृष्टि में रखकर भले ही गुप्त जी ने परम्परागत रामकथा के क्रमिक विकास को मनोकूल तोड़ा-मरोड़ा हो; पर इससे रामकथा की सहजता और रोचकता में कोई अन्तर नहीं आने पाया; अपितु परम्परागत कथा में युगानुकूल मौलिकता का सन्निवेश कर कवि ने रामकथा को युग सापेक्ष बना दिया है। ऊर्मिला की चरित्र सृष्टि इसका उदाहरण है। गुप्त जी की ऊर्मिला रामकथा से पृथक न होकर उसके सहज प्रभाव में सहयोग देती उसी के अनुरूप चित्रित हुई है। इस परिप्रेक्ष्य में आदर्शवादी कवि गुप्त का स्पष्ट विचार है–"किसी कथानक में आवश्यकतानुसार फेर-फार करने का अधिकार तो कवियों को है; पर आदर्श को विकृत करने का अधिकार किसी को नहीं।"[१]

यही कारण है कि गुप्त जी ने राम के परम्परागत आदर्शवादी रूप को ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। उनके राम की अलौकिकता, प्रभुता एवं गुरुता पर तुलसी के राम की अमिट छाप है। कवि राम तथा सीता से सम्बन्धित वर्णनों में पूर्ण सजग है, मर्यादावादी है। तुलसी के प्रति अपनी अगाध निष्ठा व्यक्त करते हुए गुप्त जी का कहना है:–

"तुलसी दास के चरणों पर मैं अपना सिर रखता हूँ।.........."[२]

तुलसी, यह दास कृतार्थ तभी-मुँह में हो चाहे स्वर्ण न भी,
पर एक तुम्हारा पत्र रहे, जो निज मानस-कवि कथा कहे।[३]

'साकेत' पर 'मानस' के पड़े व्यापक प्रभाव से सम्बन्धित विवेचन के लिए दोनों ही महाकाव्यों में वर्णित रामकथा विषयक प्रसंगों और उद्धरणों का आधार लेना समीचीन होगा। सर्वप्रथम उभय प्रबन्ध काव्यों में व्याप्त ईश्वरीय भावना पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः......

तुलसी के राम त्रैलोक्यपति विष्णु के साक्षात् अवतार हैं, जिनकी वन्दना शिव, ब्रह्मा तथा अन्य देवता और ऋषिगण करते हैं। उनके अविर्भाव का उद्देश्य गाय, ब्राह्मण, देवता तथा सज्जनों (भक्तों) का उद्धार करना है। राम का ईश्वर अवतार होना मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वीकार किया है। उनके इन विचारों पर सर्वत्र मानस का स्पष्ट प्रभाव है:–

---

(१) मेघनाद–वध, द्वितीय संस्करण, पृ० ७२ (२) 'आज' (दै०पत्र) १५ अगस्त १९४१ (३) साकेत–६/१५६

मानस –गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनु धारी।।१
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।२
एक अरूप अनूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा।।
....राम अनादि अवधपति सोई।।

साकेत–हो गया निर्गुण–सगुण साकार है, ले लिया अखिलेश ने अवतार है।
पापियों का जान लो अब अंत है, भूमि पर प्रकटा अनादि अनंत है।३

मानस– भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तन भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।४

साकेत – धर्म हेतु अवतीर्ण हुए प्रभु, मुनियों ने यह जाना था।
नर रूप निज परमेश्वर को पहले ही पहचाना था।।५

मानस के अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर और उत्तर इत्यादि काण्डों में राम अनेक बार अपने ईश्वरत्व की स्वयं घोषणा करते हुए कभी शबरी, कहीं सुग्रीव तो अन्यत्र विभीषण अथवा अवधवासियों से जिस प्रकार आत्म परिचय देते हैं वही स्थिति गुप्त जी के राम की भी है। ऐसे वर्णनों के लिए साकेतकार निश्चय ही 'मानस' से प्रभावित है। यथा:–

मानस– सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जानि भुसुण्डि संभु गिरिजाऊ।।
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभै सरन तकि मोही ।।६
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउ सद्य तेहि साधु समाना।।

x x x x

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा विस्वासा।।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। यहि आचरनु बस्य मैं भाई।।७

साकेत– जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे।
पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव धरेंगें,
वे औरों को भी तार पार उतरेंगे।।

(१) मानस–५/३४/३ (२) मानस–१/११६ (३) साकेत–१/१८ (४) मानस–७/७२
(५) साकेत–११/३६६ (६) मानस–५/४८/१–३ (७) मानस–७/४६/३–४

हमको लेकर ही अखिल सृष्टि की क्रीड़ा,
आनन्दमयी नित नई प्रसव की पीड़ा।।[1]
मैं आया, जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय से, मिटे न जीवन सादा।।[2]
सुख देने आया, दुःख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया।।

साकेत के प्रथम सर्ग में वर्णित अयोध्या-माहात्म्य में मानस में तुलसी द्वारा किए गए रामराज्य-वर्णन की सर्वत्र अनुगूँज व्याप्त है।[3]

साकेत के अन्तर्गत धनुषभंग-प्रसंग, (धनुष का टूटना एवं लक्ष्मण-परशुराम संवाद) का आधार तुलसी का मानस ही रहा है। जनक की निराशा एवं आत्मग्लानि से सम्बन्धित दोनों ग्रंथों के काव्यांश द्रष्टव्य हैं:—

मानस – अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मै जानी ।।[4]

साकेत– बस बाहुजता विलीन है, वसुधा वीर विहीन दीन है।[5]

राजा जनक के नैराश्यपूर्ण उद्‌गारों को सुनकर लक्ष्मण रोष से भर उठते हैं:—

मानस– रघुबंसिन्ह मँह जँह कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं।।[6]

साकेत– कहता यह बात कौन है ? सुनता सत्कुल जात कौन है?
शत कार्मुक इक्षु–खण्ड है, मम शुण्डोपम वासुदण्ड है।[7]

लक्ष्मण के वीरत्व व्यंजक वचनों को सुनकर वहाँ उपस्थित लोगों पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है:—

मानस– सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने।।[8]

साकेत– सुनते सब लोग सन्न थे। नत भी तात बड़े प्रसन्न थे।[9]

---

(१) साकेत–८/२३४ (२) साकेत–२३४ (३) मानस–७/२०–२३ एवं साकेत–१/१६–२३ (४) मानस–१/२५२/३ (५) साकेत–१०/३७६ (६) मानस–१/२५३/१–८ (७) साकेत–८/३७६–७७ (८) मानस–१/२५४/२ (९) साकेत–१०/३७७

राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं, जिसकी सूचना राम को गुरू वशिष्ठ से प्राप्त होती है। वह सोचने लगते हैः–

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
करन वेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा।।
विमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।[१]

गुप्त जी ने इन्हीं भावों को सीता के माध्यम से व्यक्त कराया हैः–

..................हे नाथ, अभी तक चारों भाई साथ–
भोगते थे तुम सम–सुख–भोग, व्यवस्था मेंट रही वह योग।
भिन्न सा करके कौशलराज–राज्य देते हैं तुमको आज।।
तुम्हें रूचता है यह अधिकार?[२]

राम के तिलकोत्सव के अवसर पर जब मंथरा कैकेयी से अपने कुत्सित विचार व्यक्त करती है तो रानी द्वारा उसे दी गयी फटकार मानस और साकेत में एक जैसी चित्रित है। यथा–

मानस–पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें।।[३]

साकेत– वचन क्यों कहती है तू बाम? नहीं क्या मेरा बेटा राम?
द्विजिह्वे, रस में विष मत घोल।।[४]

मंद मति मंथरा की मंत्रणा से कैकेयी की मति मारी जाती है। वह रामतिलकोत्सव को रुकवा देने के लिए राजा दशरथ से दो वरदान–भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास माँगती है। कैकेयी के असामयिक एवं अप्रत्याशित वचनों को सुनते ही–

मानस– गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेव लावा।।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरू तालू।।
माथें हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ।।[५]

साकेत– वचन सुन ऐसे क्रूर-कराल, देखते ही रह गए नृपाल।
वज्र-सा पड़ा अचानक टूट, गया उनका शरीर-सा छूट।।[६]

(१) मानस–२/१०/५–८ (२) साकेत–२/५६–५७ (३) मानस–२/१४–१५
(४) साकेत–२/४७ (५) मानस–२/२६/५–७ (६) साकेत–२/६५

दशरथ की हतज्ञान सी स्थिति को देख कैकेयी ने अपनी कर्कश वाणी द्वारा उनके दुखते हुए घावों पर नमक छिड़कना प्रारम्भ किया–

मानस– देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं।।[१]

साकेत–'मौन हो गये कहो हाँ या न।' 'सत्य-पालन है यही नरेश ?'[२]

कैकेयी के इस प्रकार के प्राणघातक त्रिया–हठ को लक्ष्य कर दशरथ की आत्मा चीत्कार कर उठती है –

कवने अवसर का भयउ गयउँ नारि विस्वास।[३]

मानस की यही प्रतिध्वनि साकेत में भी परिव्याप्त हैः–

"दैव! यह सपना है कि प्रतीति? यही है नर-नारी की प्रीति ?"[४]

दशरथ कैकेयी से इस विषय पर पुनः विचारकर वर माँगने का अनुरोध करते हैं। इस पर रानी के रोष की अग्नि और भी अधिक भड़क उठती है :–

मानस – होत प्रातु मुनि वेष धरि जौं न रामु वन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं।। [५]

साकेत – उलट दो बस तुम अपनी बात, मरूँ मैं करके अपना घात।[६]

राजा दशरथ कैकेयी को हर प्रकार से अनुकूल करने का प्रयत्न करते हैं; किन्तु सब व्यर्थ जाता है। अपने प्राणों की रक्षा कर पाने में निराश दशरथ को कैकेयी काल–सदृश लगती है। अतः वे अत्यधिक अधीर हो उठते हैः–

मानस – देखी व्याधि असाध नृप परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत वचन राम राम रघुनाथ।। [७]

साकेत – पुनः बोले मुँह फेर महीप–'राम हा राम, वत्स कुल-दीप।'[८]

इस प्रकार साकेत के लगभग सम्पूर्ण कैकेयी-कोप-प्रसंग पर तुलसी

---

(१) मानस–२/३०/४ (२) साकेत–२/६५ (३) मानस–२/२६
(४) साकेत–५/१३५ (५) साकेत–पृ०–१२६–१२७ (६) साकेत–८/२२०
(७) मानस–२/८३/४ (८) साकेत–२/१२८ (६) मानस–२/८८/१४

कृत मानस की स्पष्ट छाप है।

साकेत के चतुर्थ सर्ग के अन्तर्गत वनवास दिये जाने पर पुत्र-पिता की वार्ता से राम का मर्यादित रूप भी मानस से पूर्णतः प्रभावित है। राम सर्वत्र संयत, विनम्र, धीर एवं गम्भीर हैं।[1] इसी प्रकार सीता वन न जाये इस उद्देश्य से राम जब उनसे वहाँ के कष्टों का उल्लेख करते हैं तो उसके उत्तर में साकेत की सीता का कथन[2] मानस की सीता[3] से पूर्णतः मिलता-जुलता है। राम में सत्ता की लालसा किंचित् भी नहीं है। उनके अवतार का उद्देश्य तो लोकमंगल एवं भ्रातृ-प्रेम का आदर्श उपस्थित करना है। इस प्रकार मानस और साकेत के राम की विचारधारा एक जैसी है:–

मानस– भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोंहि सनमुख आजू।।
नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन विषय रस रूखे।।[4]

साकेत– भैया भरत अयोग्य नहीं, राज्य राम का भोग नहीं।[5]

'राम को वन जाने का आदेश हुआ है'–इस समाचार के फैलते ही सम्पूर्ण अवध अधीर हो उठा। सभी पुरवासी राम के साथ ही वन जाने को तत्पर होते हैं। उनके लिए अयोध्या वहीं हैं जहाँ उनके राम हों। बिना राम के अयोध्या का कोई महत्व नहीं है। राम के प्रति प्रजा के इस उत्कट प्रेम के मध्य ही पुरवासियों के राष्ट्र–प्रेम की भी अच्छी झलक मिलती है। राष्ट्रकवि गुप्त को ऐसे पुनीत भावों की परोक्ष रूप में प्रेरणा तुलसी से प्राप्त हुई प्रतीत होती है :–

मानस– अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू।।
जहाँ रामु तहँ सबुई समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहीं काजू।।
जहाँ बसई तहँ सुन्दर देसू। जो प्रति पालइ सोई नरेसू।।[6]

साकेत– स्वर्गोपरि साकेत, राम का धाम तू,
रक्षित रख निज उचित अयोध्या नाम तू।

---

(१) साकेत–४/७४–७५ (२) साकेत–४/११६ (३) मानस–२/६४–६८
(४) मानस–२/४२ एवं ५० (५) साकेत–४/१०४ (६) मानस–२/७४, ८४
(७) साकेत–५/१३५

रामचन्द्र भवभूमि अयोध्या की सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा।।[७]

यह जंगम साकेत देव-मन्दिर, चला,
जहाँ हमारे राम वहीं हम जायेंगे, वन में ही नव-नगर-निवास बनायेंगे।[१]

सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा, सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।[२]

वनवासी राम अपने विरह में अधीर अयोध्यावासियों को अनेक प्रकार से समझा बुझाकर लौटाते हैं; किन्तु वे पुनः उन्हीं का अनुगमन करते हैः–

मानस-कृपासिन्धु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिर आवहिं।[३]

साकेत– रखकर उनके वचन लौटते लोग थे,
पाते तक्षण किन्तु विशेष वियोग थे।
जाते थे फिर वहीं टोल के टोल यों-आते-जाते हुये जलधि कल्लोल ज्यों।।[४]

राम के श्रृंगवेरपुर (के निकट) आने का समाचार पाकर गुहराज आतिथ्य सत्कार हेतु उनके सन्निकट पहुँचता है। उस समय राम जिस प्रकार उसे स्नेह और सम्मान देते हैं उससे ऊँच-नीच एवं जाति-कुजाति, के सारे संकोच जाने कहाँ विलीन हो जाते हैं। भक्ति के अन्तर्गत कोई भेद अपेक्षित नहीं होता। कालान्तर में भरत-शत्रुघ्न और वशिष्ठ भी ऐसे ही उदारवादी आचरण का परिचय देते हैः–

मानस– यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई ।।
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई।।[५]
लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुई लेइअ सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।[६]

साकेत– "प्रभु आये हैं" समाचार सुनकर नया,
भेंट लिए गुहराज सपरिकर आ गया।
देख सखा को दिया समादर राम ने,
उठकर, बढ़कर, लिया प्रेम से सामने।।
सिर गुह ने हँस उन्हें हँसाकर नत किया,
प्रभु ने तत्क्षण उसे अंक में भर लिया।।[७]

---

(१) सकेत–५/१२६–२७ (२) साकेत–८/२२० (३) मानस–२/८३/४
(४) साकेत–५/१२८ (५) मानस–२/८८/१–४ (६) मानस–२/१९४/१–२
(७) साकेत–५/१३७

रात्रि में सीता-राम को कुशासन पर सोते देख निषादराज का हृदय करुणा प्लावित हो उठता है; वह मन ही मन कैकेयी को कोसने लगता है:–

मानस – कैकयनंदिनि मंद मति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं सुख अवसर दुखु दीन्ह।।[1]

साकेत – खोकर ऐसे लाल, लिया क्या कैकेयी ?
क्या करना था तुझे, किया क्या कैकेयी ?[2]

सुमन्त्र जानकी और लक्ष्मण सहित राम को वन में छोड़कर अनिच्छा पूर्वक अयोध्या लौटते हैं; किन्तु उसके रथ के घोड़े तक राम-विरह में अधीर हो हिनहिनाते, ठिठुकते रुकते और रोते हैं:–

मानस– रथ हाँकेउ हय राम तनु हेरि हेरि हिहिनाहिं।
चरफराहिं मग चलहिं न धीरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे।।
अढ़कि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे।।[3]

साकेत– हींस रहे थे उधर अश्व उद्‌ग्रीव हो, जैसे उनका उड़ा जा रहा जीव हो।
जो थे समीर के जोड़ों के-उठते न पैर थे घोड़ों के।
थे राम बिना वह भी रोते, पशु भी प्रेमानुरक्त होते।।[4]

राम के बिछुड़ने पर जब घोड़ों की ऐसी दशा थी तो सारथी की मनोदशा का अनुमान और उसकी अभिव्यक्ति असम्भव है। सुमंत्र सोच रहे हैं कि अयोध्या पहुँच कर सभी को क्या मुख दिखाऊँगा? इसीलिए वे सारा दिन एक वृक्ष के नीचे व्यतीत कर अँधेरा हो जाने पर नगर में प्रवेश करते हैं। उनकी करुण दशा का अनुमान करने हेतु गोस्वामी जी की अर्धालियाँ द्रष्टव्य हैं:–

सोक सिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी।
मींजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गँवाई।।
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसर पावा।
अवध प्रबेसु कीन्ह अंधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुआरे।।[5]

---

(१) मानस–२ / ६१ (२) साकेत–५ / १४१ (३) मानस –२ / ६६ तथा १४३ / ५–६
(४) साकेत–६ / १७०–१७१ (५) मानस–२ / १४३–१४७

तुलसी के इन्हीं भावों को साकेतकार ने इस प्रकार संजोया हैः–

कर में घोड़ों की रास लिये, निज जीवन का उपहास किये।
होकर मानव परतंत्र निरे, सूना रथ लिये सुमन्त्र फिरे।
जब रहनी आकर प्राप्त हुई, बाहर ही साँझ समाप्त हुई।
नीरव गति से, उदास उर में, तब सचिव प्रविष्ट हुए पुर में।[१]

सुमंत्र के राजमहल पहुँचते ही कुहराम मच जाता है। उन्हें एकाकी आया जानकर महाराज दशरथ की दशा अत्यन्त सोचनीय हो जाती है। अंततः वे राम का स्मरण करते हुए प्राण त्याग देते हैंः–

मानस– लेत सोचु भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती।।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।।
राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयो सुर धाम।।[२]

साकेत–गजराज पंक में धँसा हुआ। छटपट करता था फँसा हुआ।...
हे जीव चलो अब दिन बीते, हा राम, राम लक्ष्मण सीते![३]

वन जाते हुए राम सीता को थकी देखकर उनके विश्राम हेतु छाया में रुक जाते हैं, तभी दर्शनार्थ आयीं ग्राम वधूटियाँ जिज्ञासावश सीता से अब दोनों पुरुषों का परिचय पूछती हैं। सीता उन्हें बड़ी शालीनता के साथ उत्तर देती हैं :–

मानस– कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।।[४]

नाटकीय तत्वों से युक्त इन्हीं भावों को साकेत में संक्षिप्त रूप में यूँ प्रस्तुत किया गया है–

"शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?
गोरे देवर श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।[५]

राम के वन जाने तथा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त गुरु वशिष्ठ भरत को ननिहाल से बुलवाते हैं। समाचार पाते ही भरत-शत्रुघ्न

(१) साकेत–६/१७०–१७२ (२) मानस–२/१४८/७ तथा १५५–७
(३) साकेत–६/१७४–१७८ (४) मानसस–११७ (५) साकेत–५/१४८

अयोध्या के लिए अविलम्ब प्रस्थान करते हैं। मानस के भरत को नगर का समस्त वातावरण नैराश्य और विषाद में निमग्न प्रतीत होता है–

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेखि भयावनु लागा।।
खग मृग हय गय जाहिं न जोये। राम बियोग कुरोग बिगोये।।
हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ।।[१]

मैथिलीशरण जी ने इस विषाद पूर्ण वातावरण के चित्रण की प्रेरणा बहुत कुछ मानस से ग्रहण की है:–

हो रही संध्या अभी उपलब्ध, किन्तु मानो अर्द्धनिशि निस्तब्ध।
नागरिक–गण–गोष्ठियों से हीन, आज उपवन हैं विजन में लीन।
जा रहा है व्यर्थ सुरभि-समीर, हैं पड़े हत-से सरों के तीर।
दीख पड़ते हैं न सादी आज, गज न लाते हैं निषादी आज।
फिर रही गायें रँभाती दूर, .कुछ न कुछ विघटित हुआ विभ्राट।[२]

भरत के अयोध्या प्रवेश करने पर उन्हें जो भी दिखाई देता है वह गहरे विषाद में डूबा और मौन है। इससे उनका हृदय अमंगल की आशंका से उत्तरोत्तर आक्रांत होता जाता है:–

मानस– पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवहिं जुवारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं।।[३]

साकेत– प्रहरियों का मौन विनयाचार,
देखकर उनका गँभीर विषाद, भरत पूछ सके न कुछ संवाद।।[४]

राम के वनगमन का कारण जानने पर भरत द्वारा कैकेयी के प्रति प्रयुक्त कठोर शब्दावली के लिए भी साकेतकार ने मानस का आधार लिया है।[५] साकेत में वर्णित चित्रकूट प्रसंग की गुप्त जी ने मानस से प्रेरणा ग्रहण की है। मानस के अयोध्याकाण्ड में वहाँ की सुरम्य प्रकृति तथा राम-भरत की मिलनि, पुनः अयोध्या लौट चलने की भरत द्वारा की गयी विनती और जनकागमन आदि के वर्णन में सर्वत्र मानस की अनुगूँज विद्यमान है। साकेत के चित्रकूट से सम्बन्धित दोनों महाकाव्यों के मार्मिक स्थल द्रष्टव्य हैं :–

---

(१) मानस–२/१५८–१५६/७–८ तथा १ (२) साकेत–७/१८४–१८५
(३) मानस–२/१५८ (४) साकेत–७/१८८–१८६ (५) दे०–मानस–२/१६०–१६३ तथा साकेत–७/१६६–२०४

मानस– कामद गिरि भे राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा।।[1]
साकेत– सिद्ध-शिलाओं के आधार, ओ गौरव गिरि उच्च उदार।[2]
मानस– पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ।।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। जिन किये साधु समाज घनेरे।।[3]
साकेत– दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक लीला,
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला।।[4]

पर्वतीय प्रदेश में वर्षा वर्णन से सम्बंधित (साकेत के) स्थल पर भी तुलसी कृत मानस का परोक्ष प्रभाव प्रतीत होता हैः–

मानस– लछिमन देखहु मोर गन नाचत, वारिद पेखि।
साकेत– घिरकर तेरे चारों ओर, करते हैं घन क्या ही घोर।
नाच-नाच गाते हैं मोर, उठती है गहरी गुँजार।।[5]

इसी प्रकार साकेत का शरद ऋतु वर्णन से सम्बन्धित गीत 'निरखि सखी ये खंजन आये' में सम्पूर्ण प्रकृति के निखरे और सँवरे रूप[6] पर मानस से प्राप्त प्रेरणा के अच्छे संकेत सहज ही उपलब्ध होते हैं। यथा–

जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।[7]

इसी प्रकार वनवासी राम को ऋषिगण जब मुनियों का अस्थि समूह दिखाते हुए उनका संहार राक्षसों द्वारा किये जाने का वृत्तांत देते हैं तो राम में सात्विक क्रोध भड़क उठता हैः–

मानस– निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाये।।
निसिचर हीन करउँ महिं, भुज उठाय पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह।।[8]
साकेत– दण्डक वन में जाकर प्रभु ने लिया धर्म-रक्षा का भार,
दिया अश्रु-जल हत मुनियों को उनका अस्थि-समूह निहार।।[9]

साकेत के शबरी प्रसंग,[10] सुग्रीव पर लक्ष्मण का प्रकोप,[11] शरणागत विभीषण प्रसंग,[12] राम-रावण-युद्ध,[13] इत्यादि प्रसंग तुलसीकृत मानस के आधार पर प्रस्तुत हैं; उनमें कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्ष 'मानस' की झलक सहज प्राप्य है।

---

(१) मानस–२/२७६/१ (२) साकेत–६/२७४–२७५ (३) मानस–२८७/२–४
(४) साकेत–६/२६७ (५) साकेत–६/२७४ (६) साकेत–६/२६६
(७) मानस–४/१६/६ (८) मानस–३/९/ (९) साकेत–११/४११
(१०) साकेत–११/४२७ (११) वही–४३० (१२) साकेत–११/४३८ (१३) वही–४३६

इस प्रकार अनेक भिन्नताओं तथा नवीनताओं के बावजूद साकेत के अधिकांश कथानक एवं पात्रों पर मानस की स्पष्ट छाप अंकित है। मानस के अन्तर्गत मार्मिक स्थलों के चित्रण में गोस्वामी जी को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, साकेतकार ने उससे भी लाभ उठाया है। कथानक, भाव एवं रसों से सम्बन्धित प्रभाव के अतिरिक्त गुप्त जी की विचारधारा पर भी मानसकार का अमिट प्रभाव है। तुलसी का भाग्य में विश्वास था। उनके विचार में समस्त कार्य ईश्वरीय प्रेरणा से होते हैं। गुप्त जी की विचारधारा भी कुछ इसी प्रकार की है –

मानस– उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।।
हानि लाभु जीवन मरनु जस अपजस बिधि हाथ।।[1]

साकेत– ईश के इंगित के अनुसार हुआ करते हैं सब व्यापार।
समझ लो देव की इच्छा यही है, करे जो कुछ कि वह होता वही है।[2]

तुलसी का भाग्यवाद मलूकदास के भाग्यवाद जैसा नहीं। वह व्यक्ति को निष्क्रिय होकर बैठ जाने की प्रेरणा नहीं देता। कवि के विचार से ईश्वर कर्मानुसार फल देता है:–

सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फलु हृदय बिचारी।[3]

इसी प्रकार साकेतकार भी कर्म द्वारा अपना पुरुषार्थ जताने की प्रेरणा देता है:–

भले ही देव का बल दैव जाने, पुरुष जो है न क्यों पुरुषार्थ माने।।
करके अपना कर्तव्य रहो संतोषी, फिर सफल हो कि तुम विफल, न होगे दोषी।[4]

तुलसी की दृष्टि यद्यपि सदैव अलौकिक आदर्श पर ही अटकी रही; तथापि उन्होंने सांस्कृतिक, नैतिक एवं जीवन के व्यावहारिक पक्षों का मानस में विस्तृत दिग्दर्शन कराया है। गार्हस्थ जीवन के आदर्श रूप से सम्बन्धित संत कवि के विचार (सीता की उक्ति रूप में) द्रष्टव्य हैं :–

जँह लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिन तियहिं तरनिहुँ ते ताते।।
जल बिनु मीन नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।[5]

साकेतकार भी आदर्श दाम्पत्य जीवन के लिए पातिव्रत धर्म का प्रबल पक्षधर है–

---

(१)मानस–४/११/७ तथा अयो०–१७१ (२) साकेत–२/५६ (३) मानस–२/७७/७ (४) साकेत–३/८१ तथा ८/२२८ (५) मानस–२/६५/३–७

मेरी यही महामति है, पति ही पत्नी की गति है।[1]

इसी क्रम में साकेत की ऊर्मिला की एक उक्ति द्रष्टव्य हैः–

अब जो प्रीतम को पाऊँ !
आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।[2]

ऊर्मिला के उपर्युक्त उदात्त विचारों में कहीं न कहीं मानस के भरत की निम्नांकित उक्ति की अनुगूँज परिव्याप्त हैः–

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ।।[3]

इस प्रकार साकेत के प्रथम सर्ग में कवि अयोध्या में हो रहे प्रातःकाल सम्बन्धी वर्णन में कहता हैः–

बहुत तारे थे अँधेरा कब मिटा, सूर्य का आना हुआ जब, तब मिटा।।[4]

गुप्त जी को इन विचारों की प्रेरणा निश्चय ही रामचरितमानस के निम्नांकित दोहे से प्राप्त हुई होगीः–

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रवि राति न जाइ।।[5]

'साकेत' पर 'मानस' के प्रभाव से सम्बन्धित इस विस्तृत विवेचन का यह अभिप्राय नहीं कि साकेतकार की अपनी कोई मौलिकता नहीं है। वास्तव में गुप्त जी ने परम्परा की नींव पर अपनी मौलिकता का प्रासाद निर्मित किया है। अनन्य रामोपासक तथा हिन्दी कवि होने के कारण उनका मानस से प्रभावित होना स्वाभाविक भी था। इस प्रकार,'मानस' मैथिलीशरण कृत 'साकेत' का उपजीव्य ग्रंथ है; तो भी साकेत में कवि की मौलिकता पूर्णतः विवाद रहित है। 'साकेत' में व्यक्त गुप्त जी की रामभक्ति को तुलसी की रामभक्ति से मिलाकर देखने की आवश्यकता नहीं। दोनों अपने-अपने युग के कवि हैं। अतः उनकी भक्ति भावना में भी यह पार्थक्य परिलक्षित होना स्वाभाविक है। गुप्त जी की रामभक्ति में भावुकता-प्राबल्य है। आधुनिक युगबोध और स्वदेशानुराग उनकी भक्ति-भावना के अविभाज्य अंग हैं।

(१) साकेत–४/१२० (२) साकेत–६/३२४ (३) ामनस–२/२६८
(४) साकेत–१/२४ (५) मानस–७/७८

साकेत पर गाँधी जी का प्रभाव

दिसम्बर सन् १८३५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के साथ ही देश में राष्ट्रीय चेतना का उत्तरोत्तर विकास हुआ। भारतीय राजनीति में पदार्पण करने से पूर्व बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गाँधी ने अफ्रीका में अपने अधिकार की जो लड़ाई छेड़ी उससे वहाँ के प्रवासी भारतीय ही नहीं; भारत देशवासी भी बहुत प्रभावित हुए थे। युवा कवि मैथिलीशरण गुप्त उनमें से एक थे। गुप्त जी ने बैरिस्टर गाँधी की संकल्प-शक्ति, नवचेतना तथा उनके दुर्धर्ष संघर्ष की मुक्तकण्ठ से सराहना अपनी अनेक रचनाओं में की और उन्हें गाँधी जी के पास (अफ्रीका) भेजा था। यही नहीं उन रचनाओं को गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' पत्र में प्रकाशित भी कराया था। इस प्रकार गाँधी जी और गुप्त जी के सम्बन्ध बहुत पुराने एवं प्रगाढ़ थे।[१] भारत आने पर जब गाँधी जी ने भारतीय राजनीति का नेतृत्व किया तो दोनों के बीच निकटता एवं घनिष्टता निरन्तर बढ़ती गयी।

भारत—भ्रमण-कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रपिता गाँधी मैथिलीशरण जी के विशेष आग्रह पर २३ नवम्बर सन् १९२९ को उनके निवास-स्थान चिरगाँव पहुँचे। इस अवसर पर मैथिली बाबू ने राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने हेतु गाँधी जी को पर्याप्त धन दिया। अन्य शब्दों में वे प्रच्छन्न रूप से गाँधी जी के सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों से बराबर सम्बद्ध रहे और सहयोग करते रहे। गाँधी जी के आह्वान पर सन् १९४२ में ही गुप्त जी ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के अंतर्गत जेल-यात्रा भी की। झाँसी और आगरा जेलों

१—"कवि मैथिलीशरण गुप्त जी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह भी मुझे भली-भाँति जानते हैं। हम दोनों के बीच कोई ग़लतफ़हमी नहीं हो सकती"
— महात्मा गाँधी।

में वे कई महीने रहे। १७ अप्रैल से १४ नवम्बर, १६४१ (लगभग सात माह) के कैदी जीवन में गुप्त जी की दिनचर्या बिल्कुल ही बदल गयी। गुप्त जी ने अपने वैष्णवी संस्कारों को अस्वीकार करते हुए प्रातः और सायंकाल संध्योपासन की क्रिया को तिलाञ्जलि देकर उसके स्थान पर सूत-कताई प्रारंभ कर दी। उनकी गिरफ्तारी की प्रतिक्रिया स्वरूप गाँधी जी ने वर्धा से प्रकाशित 'खादी जगत' (अक्टूबर १६४१ के अंक) में अपना विरोध व्यक्त किया था।[1]

गाँधी युगपुरुष थे, युगनायक थे। वे कवि गुप्त की आदर्श राष्ट्रीय भावना के मूर्तिमंत रूप थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महात्मा जी के विचार उनके लिए मंत्रतुल्य थे। जेल जाने से पूर्व तक मैथिलीशरण जी बुन्देली-वेशभूषा-अँगरखा पगड़ी और दाढ़ी में रहते थे; किन्तु कारागार से मुक्त होते ही वे खादी का कुर्ता, बण्डी, धोती, अँगोछा और गाँधी-टोपी धारण करने लगे, साथ ही उन्होंने दाढ़ी और मूँछ दोनों मुड़ा दी। यही उनका जीवन-पर्यन्त वेश-विन्यास रहा।

देशवासियों में वैचारिक क्रांति लाने हेतु गाँधी जी ने देश की विभिन्न भाषाओं के कवियों का आह्वान किया, फिर भी आजादी की लड़ाई उन्होंने हिन्दी भाषा में लड़ना उचित समझा। वे सरल–सहज हिन्दी के हिमायती थे। गुप्त जी ने उनकी प्रेरणा से ही प्रसाद गुण प्रधान राष्ट्रीय काव्य की सृष्टि कर जन-जागृति का श्लाघनीय कार्य किया था। देश-स्वातंत्र्य की दिशा में गुप्त जी के इस असाधारण योगदान को लक्ष्य कर गाँधी जी ने सन् १६३६ में विजय दशमी के अवसर पर काशी में आयोजित मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समारोह की अध्यक्षता की तथा उन्हें मैथिली काव्यमाला-ग्रन्थ' (हस्तलिखित) भेंट किया था। गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि भी किसी साहित्यिक अथवा सरकारी संस्था द्वारा नहीं दी गयी थी; बल्कि यह उपाधि राष्ट्रपिता गाँधी ने उनके कृतित्व के राष्ट्रीय महत्व को ध्यान में रखकर प्रदान की थी।

१–"सरकार भी कभी–कभी बड़ी उदार हो जाती है। कुछ आदमियों को यों उठा ले जाती है। श्री मैथिलीशरण जी भी वहीं हैं। वे भी यों ही पकड़ लिये गये। वे सुप्रसिद्ध कवि तो हैं लेकिन कविता उनकी कलम से नहीं, वरन् सूत के तारों से निकलती हैं।"

मैथिलीशरण जी लोकनायक बापू के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से पूर्णतः सामंजस्य रखने के कारण जाति-धर्म जैसी संकुचित विचारधारा से परे थे। उन्होंने हरिजन, मुसलमान, बौद्ध, सिख और जैन सभी को व्यावहारिक जीवन में अपनाया तथा अपनी कृतियों में स्थान दिया। मुंशी अज़मेरी को वे भ्रातृ तुल्य स्थान देते थे। 'काबा और कर्बला' एवं अर्जन और विसर्जन' इस्लाम धर्म पर आधारित उनकी कृतियाँ हैं। इसी प्रकार सिख धर्म के गुरुओं की जीवनियों एवं सिद्धान्तों पर आधारित गुरुकुल और बौद्ध-धर्म तथा दर्शन प्रधान 'यशोधरा' गुप्त जी की उदार भावना का परिचय करातीं है। इसी परिप्रेक्ष्य में गुप्त जी की निम्नांकित उक्ति भी ध्यातव्य हैः–

''हमें एक दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा।''

इस प्रकार गुप्त जी की जातीय भावना अत्यंत उदार थी। उनके 'हिन्दू' शब्द का अर्थ हिन्दुस्तान में रहने वाला था। इसी प्रकार उन्होंने 'जाति' शब्द का अर्थ मनुष्य-जाति से लिया था। **'मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे'** काव्योक्ति इसका प्रमाण है।

राष्ट्रकवि गुप्त के रचना–संसार पर गाँधी जी का व्यापक एवं अमिट प्रभाव है। 'साकेत' गाँधी-युग की सृष्टि है। गुप्त जी पर बापू की नीतियों और रीतियों का व्यापक प्रभाव था। इसीलिए वे पराधीन भारत के हरिजनों और नारियों को गुलामों का भी गुलाम कहते तथा उनके हित-चिन्तन के लिए वे सदैव चिन्तित रहते थे। गुप्त जी ने गाँधी जी से प्रेरणा पाकर ही हरिजनों, ग्रामीणों एवं नारियों के प्रति 'साकेत' में इन दलितों का भरपूर पक्ष लेते हुए सहानुभूति व्यक्त की है। महात्मा जी छुआछूत को सामाजिक कलंक मानते थे। इसके उन्मूलन हेतु गुप्त जी ने ही 'साकेत' में जातिगत संकीर्णता के स्थान पर उदारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गुह (निषाद), केवट, चित्रकूट के कोल-किरात और भिल्ल एवं शवरी आदि उपेक्षितों को राम ने सहर्ष अपनाया, उनकी माया सीता द्वारा चित्रकूट की वन्य नारियों के सन्निकट जाना उन्हें सुसंस्कृत, सभ्य तथा आत्म-निर्भर बनाने के लिए सूत कातने, कपड़ा बुनने, पौधों को रोपने और खाद्यान्नों को उत्पन्न करने का संदेश देने में गाँधी विचार-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता हैः–

ओ भोली कोल किरात–भिल्ल बालाओं,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गयी आओ।........
तुम अर्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ हम कातें बुनें गान की लय में।[1]

भारत गाँवों का देश है। ग्रामों के अशिक्षित तथा निर्धन किसान अपनी फटेहाली पर भी प्रसन्न रहते हैं। गाँधी जी की भाँति कवि गुप्त में भी इनके प्रति सहानुभूति है। वे कहीं उनके पुरुषार्थ का गान करते हैं तो अन्यत्र कहीं उनके त्यागी उदारवादी रूप का। 'साकेत' जैसे पौराणिक आख्यान प्रधान महाकाव्य में भी वे सच्चे सुख पर रीझे दिखाई देते हैंः–

''हम राज्य लिए मरते हैं?
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं''[2]

राष्ट्रपिता गाँधी नारी-कल्याण के लिए उन्हें शिक्षित किये जाने पर विशेष बल देते थे। साकेत में इसीलिए कवि ने ऊर्मिला से पाठशाला खोले जाने की इच्छा व्यक्त करायी है। गाँधी जी का विचार था कि स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखना आधे देश का सहयोग न लेना है। महात्मा जी का कहना था कि नारियाँ देश-स्वातंत्र्य के लिए पुरुषों को प्रेरित करें, उनकी शक्ति बनें तथा इस आन्दोलन से सम्बद्ध लोगों की सेवा हेतु आगे आयें। स्वतंत्रता के लिए वे संघर्षरत पुरुषों को परिवार की ओर से बेफिक्र कर उस दायित्व को स्वयं निभायें। साकेतकार ने अपने प्रमुख नारी-पात्रों की चारित्रिक सृष्टि गाँधी जी की इस लोक संग्रही भावना के आधार पर की है। ऊर्मिला, सीता, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति यहाँ तक कि कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी भी वीर-वंश की बान एवं देश की शान' बढ़ाने के लिए अयोध्यावासियों को प्रेरित तथा प्रोत्साहित करती है। माण्डवी घायल हनुमान की सेवा में किंचित् भी विलम्ब न कर **'अपना आँचल फाड़ बाँधती थी वह पट्टी।'** इसी प्रकार ऊर्मिला लंका जाकर युद्ध करने के लिए तत्पर साकेतवासियों के साथ इसलिए भी जाना चाहती है; ताकि वह घायल सैनिकों की सेवा-सुश्रुषा कर सकेः– 'अपने

---

(१) साकेत–८ / २२७ (२) साकेत–६ / ३०७

हाथों घाव तुम्हारा धोऊँगी मैं।' इस प्रकार 'साकेत' के नारी-पात्रों की जनसेवा भावना गाँधी जी की विचारधारा से अनुप्राणित है।

'साकेत' में जहाँ तानाशाही का तीव्र विरोध है वहीं अपने अधिकारों के लिए सतत् संघर्ष का दृढ़ संकल्प भी है। रामकथा जैसे लोक-प्रख्यात आख्यान द्वारा कवि ने परोक्षतः विदेशी-साम्राज्य के प्रति अपनी विद्रोही भावना व्यक्त की है:-

तात! राज्य नहीं किसी का वित्त,
वह उन्हीं के सौख्य-शांति निमित्त।[१]

लोकतंत्र में प्रजा सर्वोपरि शक्ति होती है। वह जिसे चाहे वही सत्ता में रह सकता है अन्यथा नहीं। परतंत्रता के उस युग में रामकथा के ब्याज से गुप्त जी ने प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए जो आवाज उठाई इसमें सर्वत्र गाँधी जी द्वारा निर्दिष्ट सतत् संघर्ष और दृढ़ता की गंध समाहित है:-

राजा हमने तुम्हीं को है चुना,
करो न यूँ हाय, लोकमत अनसुना।.....
नहीं अधिकार अपना वीर खोते,
उचित आदेश ही हैं मान्य होते।[२]

विदेशी-शासन का विरोध करने के लिए गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया था। यही नहीं शासन से अपनी बात मनवाने के लिए उन्होंने 'धरना' और 'अनशन' पर भी बल दिया था। अयोध्यावासी वन जाने को तत्पर राम को रोकने के लिए सविनय अवज्ञा करते दृष्टिगत होते हैं-

जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ,
यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहाँ।[३]

राज्य द्वारा निर्मित नियमों का पालन राजा और प्रजा सभी के लिए अनिवार्य होता है, किन्तु अंग्रेजी-राज्य में ऐसा न था। फिरंगी विशेषाधिकार से युक्त थे। गुप्त जी ने प्रकारान्तर से इस अनीति के प्रति चेतावनी दी है :-

---

(१) साकेत-७/२०२ (२) साकेत-५/१२६ (३) साकेत-५/१२६

शासन सब पर है इसे न कोई भूले,
शासक पर भी, वह भी न फूलकर ऊले।[१]

भारत–भ्रमण द्वारा गाँधी जी ने भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने के साथ ही साथ उनमें शासन के अनुचित आदेशों के विरुद्ध भावना भी जगायी थी। 'साकेत' का विभीषण अन्यायी लंकापति का तीव्र विरोध करते हुए अपने देशप्रेम का परिचय देता है:–

तात देश की रक्षा का ही कहता हूँ मैं उचित उपाय
पर वह मेरा देश नहीं जो करे दूसरों पर अन्याय।[२]

गाँधी जी देश के हित के साथ–साथ समग्र विश्व का कल्याण चाहते थे। गुप्त जी की विश्व बन्धुत्व भावना पर राष्ट्रपिता की अमिट छाप अंकित है:–

किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं क्या यह प्राण,
एक देश क्या अखिल विश्व का तात चाहता हूँ मैं भाण।....३

भरतखण्ड का द्वार विश्व के लिए खुला है,
भुक्ति-मुक्ति का योग जहाँ पर मिला-जुला है।[४]

मैथिलीशरण जी गाँधी जी से इतने प्रभावित थे कि वे समय–समय पर अपनी प्रकाशित रचनाओं को उनके पास भेजकर महात्मा जी से दिशा-निर्देश की प्रार्थना करते थे। गुप्त जी का 'साकेत' गाँधी-युग की सृष्टि है, जो तद्‌युगीन परिस्थितियों से पूर्णतः अनुप्राणित है। साकेत के राम की आदर्श कल्पना कवि ने गाँधी जी को ध्यान में रखकर ही की थी।'[५] इसीलिए उनके राम गोस्वामी जी के राम से भिन्न हैं। वे ब्रह्म के अवतार न होकर महामानव हैं, महापुरुष हैं और महानायक। साकेत के राम का शिक्षक स्वरूप महात्मा गाँधी के अत्यंत सन्निकट है, जिसे साकेतकार ने गाँधी जी को लिखे गये पत्र में स्वीकार किया है।[६]

महात्मा गाँधी को 'साकेत' भेंट करके गुप्त जी ने उनके विचार

---

(१) साकेत–८/२३१ (२) साकेत–११/४३७ (३) साकेत–११/४३७
(४) साकेत–१२/४६६ (५) दे०–गुप्त जी द्वारा गाँधी जी को लिखे गये पत्र–साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव–डॉ० कन्हैयालाल सहल, १५५
(६) दे०–वही, १५७

जानने चाहे थे। गाँधी जी साकेत में ऊर्मिला की अवतारणा से बिल्कुल अहसमत थे। अतः साकेत की नायिका ऊर्मिला के औचित्य को सिद्ध करने हेतु गुप्त जी ने राष्ट्रपिता को जो विस्तृत पत्र लिखा था उसमें उन्होंने अपने सबल तर्कों द्वारा ऊर्मिला के चरित्र को हर प्रकार से प्रासंगिक सिद्ध किया था, साथ ही ऊर्मिला की प्रस्तुति के औचित्य को स्वीकार करने की कवि ने गाँधी जी से अनुनय-विनय भी की थी :–

"आपके युग में ऊर्मिला का स्थान बने रहने के लिए मुझे आपसे समझौता करना पड़ेगा। इसीलिए तो मैंने आपको इतना कष्ट दिया और इसीलिए पुस्तक लिखते और छपते समय भी यथाशक्ति मैंने आपका कितना ध्यान रखा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।"[१]

गुप्त जी की नारी-भावना पर भी गाँधी जी का प्रभाव था। नारियों का समाज के समक्ष आना, उसकी सेवा के लिए सन्नद्ध होना, राजमहल के उपवन में पुरबालाओं हेतु पाठशाला खुलवाना और राम की सहायता करने हेतु अयोध्यावासियों के साथ ऊर्मिला का लंका जाने के लिए तत्पर होना इत्यादि प्रकरण गाँधी जी के विचारों के प्रभाव का परिणाम थे।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को महिमा-मण्डित करने में यदि साहित्यिक क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का था तो उन्हें सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय फलक पर प्रतिष्ठित करने में राष्ट्रपिता गाँधी का योगदान कम नहीं था।

(१) देखिए–'मामुलिया' पत्रिका के मै०श० गुप्त जन्मशती अंक में संकलित पत्र संख्या ८१

साकेत का आदर्श कौटुम्बिक जीवन

भारतीय संस्कृति और जीवन–मूल्यों का जैसा सुन्दर निर्वाह संयुक्त परिवारों में होता रहा है वैसा नये पारिवारिक परिवेशों में नहीं। संयुक्त परिवार हमारे आदर्श रहे हैं। पारिवारिक सम्बन्धों में जो प्रगाढ़ता तप, त्याग एवं सहिष्णुता ऐसे परिवार में रही है वह समस्त भारतीयों के लिए प्रेरणाप्रद है, प्रासंगिक है। बिखरते परिवार व्यक्तिवादी पश्चिमी विचारधारा की देन हैं, जिसमें एकदूसरे के सुख-दुख में खड़े होने तथा हिल-मिलकर रहने की भावना का तीव्र गति से ह्रास हो रहा है। आज पति-पत्नी, सास-बहू, पुत्र-पिता, भाई-भाई और घर की स्त्रियों में जो अलगाव की भावना बढ़ती जा रही है, वह साम्प्रतिक स्वार्थपरता का प्रमाण है।

मैथिलीशरण गुप्त ने संयुक्त परिवार प्रथा को आदर्श मानकर वैसा ही जीवन जिया था। इसकी प्रेरणा पारिवारिक परिवेश से तो उन्हें मिली ही थी, साथ ही रामकथा से भी। रामकथा सम्बन्धों की आदर्श कथा है। इसीलिए कवि गुप्त ने अपने साकेत महाकाव्य में रामकथा के ब्याज से मनोहारी संयुक्त परिवार का जीवन चित्रित किया है। राम का परिवार उनकी आदर्श भावना का ज्वलंत उदाहरण था। इस परिवार के सम्बन्ध में गुप्त जी की निम्नांकित काव्योक्ति ध्यातव्य हैः–

नाथ, देखती हूँ इस घर में
मैं तो इसमें ही सन्तोष
गुण अर्पण करके औरों को
लेना अपने सिर सब दोष।[1]

---

(१) साकेत–११/४०८

भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा की यही विशेषता थी। एक दूसरे का ध्यान रखना, दूसरे के दोषों को अपने ऊपर लेना तथा यश का वास्तविक भागी अन्य को बताना और स्नेह वर्षा करना ही सम्बन्धों का आदर्श स्वरूप है। राम का परिवार इस उदात्त–भावना से अनुप्राणित है। इस परिप्रेक्ष्य में राम का कथन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है:–

लक्ष्मण तुम हो तपस्पृही,
मैं वन में भी रहा गृही,
वनवासी हे लक्ष्मण
हुए वस्तुतः तुम दो ही।[१]

अयोध्या में पुनरागमन पर राम, लक्ष्मण की ही नहीं अपितु उनकी भार्या ऊर्मिला की भी सराहना करते हैं, उसे यूँ यश से मण्डित करते हैं:–

तूने तो सहधर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्मस्थापन किया भाग्यशालिनि इस भू पर।[२]

राम का यही त्यागमयी, अनुरागमयी और निरभिमानी आचरण दूसरों के लिए आदर्श बनता है। इस प्रसंग में भरत का भार्या मांडवी के प्रति कथन विशेष रूप से द्रष्टव्य है :–

सेंत-मेंत में यश का भागी
प्रिये, तुम्हारा है भर्त्ता,
करके स्वयं तुम्हारे देवर,
कहते हैं मुझको कर्त्ता।।[३]

आज सम्बन्धों में जो कटुता और स्वार्थपरता आई है, उसका कारण निहित स्वार्थ है, जो व्यष्टिवादी पश्चिमी संस्कृति की देन है। आदर्श समाज की संरचना से पूर्व आदर्श पारिवारिक परिवेश के निर्माण की आवश्यकता है जो तभी सम्भव है जब पारस्परिक विश्वास, प्रेम, त्याग और विराग की भावना उनमें हो। जहाँ ऐसे उदात्त विचार हैं, वहाँ स्वर्गीय आनंद बरसता है। देवर-भाभी का सम्बन्ध संयुक्त परिवार में आदर्श रहा

(१) साकेत–४/१२१–१२२ (२) साकेत–१२/४६५ (३) साकेत–११/४०८

है। भाभी का माँ के बराबर सम्मान रहा है, फिर भी देवर–भाभी के बीच हँसी–मजाक की पावन–गंगा बराबर प्रवाहित होती रही है। ऐसे ही सम्बन्धों के आदर्श की मनोमुग्धकारी झाँकी निम्नांकित पंक्तियों में देखने योग्य है:–

कोई तापस कोई त्यागी, कोई आज विरागी हैं,
घर सँभालने वाले मेरे देवर ही बड़भागी हैं।[1]

गुप्त जी को पारिवारिक सम्बन्धों की आदर्श भावना की वास्तविक प्रेरणा अगर किसी ग्रंथ से प्राप्त हुई तो वह तुलसीकृत रामचरितमानस से। रामकथा भायप भक्ति का आदर्श है। परस्पर त्याग और अनुराग का यह प्रकाश स्तम्भ अनंत काल तक बिखरते सम्बन्धों और टूटते रिश्तों को दृढ़ता एवं स्थिरता देने का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। लक्ष्मण अपनी पत्नी ऊर्मिला से यही चाहते हैं कि उनका भ्रातृ–भाव लोगों के लिये नमूना बने।[2] पत्नी भी पति–भावना को वरीयता देती हुई अपनी सहमति प्रकट करती है। ऊर्मिला का प्रेम इसीलिए लक्ष्मण के पथ का बाधक न होकर साधक है।

राम कैकेई के लिए भरत से भी कहीं अधिक प्रिय थे। वह 'भला दोनों में क्या है भेद? राम की माँ कल या आज कहेगा मुझे न लोक–समाज' जैसी उदात्त एवं पावन–विचारधारा से युक्त है। दैवयोग से उसके द्वारा माँगे गये दो वरदान इस परिवार के लिए अभिशाप बन जाते हैं; पर जब कैकेई को अपनी गलती का ज्ञान होता है तो वह आत्मग्लानि से भर जाती है और वह सभी के साथ राम को मनाने चित्रकूट पहुँचती है। उसका सार्वजनिक रूप से अपना अपराध स्वीकार करना बहुत बड़ी बात है और आज के स्वार्थी समाज के लिए आदर्श प्रशस्त करने वाला आचरण है। कैकेई की भावुकता के वह चरम चरण हर सहृदय एवं पाठक को विचलित कर देने वाले हैं :–

अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया.....
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ!
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।..
युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी–

---

(१) साकेत –११/४०१ (२) साकेत–६/१६३

रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी!
निज जन्म–जन्म में सुने जीव यह मेरा–
धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।[1]

असूया भाव (सौतिया डाह) सनातन है। कैकेई उसी भाव का शिकार हुई; पर रामकथा की सुमित्रा और कौशल्या दोनों इस भाव से अप्रभावित हैं। लक्ष्मण के शक्ति लगने से मूर्छित होने का समाचार जब अयोध्यावासियों को और उनमें भी विशेषकर सुमित्रा को मिलता है तो (तुलसीकृत गीतावली की सुमित्रा की भाँति साकेत की सुमित्रा भी) भ्रातृ–भाव का आदर्श अक्षुण्ण रखने हेतु वह अपने दोनों पुत्रों को दाँव पर लगाती है–

जीजी, जीजी, उसे छोड़ दो जाने दो तुम,
सोदर की गति अमर–समर में पाने दो तुम।...
जा, भैया, आदर्श गये तेरे जिस पथ से,
कर अपना कर्तव्य पूर्ण तू इति तक अथ से।[2]

परिवारों में भाइयों की पत्नियों में भी मेल–मिलाप रहे, आत्मीयता और परदुंख कातरता रहे, रामकथा इसका संदेश देती तथा पात्रों के आचरण के द्वारा उसका आदर्श प्रस्तुत करती है। निज पति संग वन में रहती सीता को अपनी छोटी बहन का बराबर ध्यान रहता है। वे ऊर्मिला के विषाद से स्वयं दुखी हैं, साथ ही उसकी परमार्थ भावना के समक्ष उनमें कृतज्ञता की गहरी अनुभूति भी है, तभी तो सीता ने ऊर्मिला का जो भावनामय चित्र बनाया है वह सचमुच भाव-विह्वल कर देने वाला है–

देवर की शर की अनी बनाकर टाँकी,
मैंने अनुजा की एक मूर्ति है आँकी।
आँसू नयनों में, हँसी वदन पर बाँकी,
काँटे समेटती, फूल छींटती झाँकी।[3]

भारतीय संस्कृति लोकसंग्रही रही है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग् भवेत्' जैसी लोक कल्याणमयी भावना ने सब के जीवन में विषाद का अंत और सुख का

(१) साकेत –८/२४८–४६ (२) साकेत–१२/४५८ (३) साकेत–८/२२८

आगमन दर्शाया है। रामकथा में भी अनपेक्षित तांडव हुआ और गर्जन-तर्जन भी; पर पारिवारिक सम्बन्ध अंततः बिखरे नहीं बल्कि और सुदृढ़ हुए। दूरियाँ निकटता और घनिष्ठता में बदलीं। चौदह वर्ष वनवासी रहे राम जब अयोध्या लौटते हैं तो उनके परिवार में आनंद का पारावार हिलोरे लेने लगता है–

देवर–भाभी मिले, मिले सब भाई–भाई,
बरसे भू पर फूल, जयध्वनि ऊपर छाई।[१]

आनंद के ये क्षण प्रेमाश्रुओं को जन्म देते हैं, क्योंकि अश्रु दुख में ही नहीं असीम सुख के क्षणों में भी जन्म लेते हैं। भावुकता के ये चरम क्षण भी रामकथा में परिव्याप्त हैं। यथा :–

मैं वन जाकर हँसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया![२]

निष्कर्षतः गुप्त जी ने साकेत के माध्यम से गृहस्थ-जीवन का जो रूप प्रस्तुत किया वह भारतीय समाज के लिए आदर्श है, प्रेरणादायक है तथा प्रासंगिक भी। जीवन–मूल्यों में जैसी अराजकता और अव्यवस्था आज व्याप्त है, उसके मध्य अस्मिता की रक्षा और मानवता का पोषण संयुक्त परिवार प्रथा के द्वारा ही सम्भव प्रतीत होता है। कवि गुप्त ने अपने साकेत में उसी सुरम्य व्यवस्था की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया है।

ऊर्मिला का विरह-वर्णन

प्रेम की जागृत अवस्था का नाम विरह है। वह प्रेम की कसौटी है, पहचान है, परीक्षा है जबकि मिलन मधुर–प्रेम का अंत है। विरहाग्नि में जलकर प्रणयी कुंदन के समान शुद्ध, प्रबुद्ध, कांतिमान और बहुमूल्य हो जाता है। वियोग का प्रथम–चरण दारुण दुख से ओतप्रोत होता है। बिछुड़न की सूचना मात्र सम्पूर्ण व्यक्तित्व को झकझोर देती है. प्रिय के प्रवास की चिन्ता, अभाव, अनिष्ट और अनिश्चय के न जाने कितने द्वार खोल देती है। फलतः नायिका में मर्मान्तक वेदना जग उठती है। इसीलिए प्रोषितपतिका (जिसका पति विदेश में हो) की अपेक्षा प्रवत्स्यत्पतिका (जिसका पति विदेश जाने को तत्पर हो) की पीड़ा अत्यंत दुखदायी होती है; फिर जहाँ अन्य स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ हों, दुर्भाग्य का पहाड़ अकेले एक पर ही टूटा हो, केवल वही अवलम्ब विहीन हुई हो तो उसके दारुण दुख की कोई सीमा नहीं होती। ऐसी दयनीय दशा में उसका सब की संवेदना का केन्द्र बन जाना स्वाभाविक है।

रामकथा की प्रमुख पात्र ऊर्मिला की करुणार्द्र कथा इसी प्रकार की है। तभी रवीन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, इंजी० छोटेलाल 'वार्हस्पत्य' एवं मैथिलीशरण गुप्त जैसे रचनाधर्मी उसके प्रति सदय हुए और सभी ने उसकी वेदना की ओर समान रूप से ध्यान दिया. फलतः ऊर्मिला को काव्य का आलम्बन बनाया। पुत्री की इस हृदय–विदारक वेदना की वास्तविक तथा सर्वाधिक अनुभूति माँ को होनी ही चाहिए, इसीलिए उसने ऊर्मिला के प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए कहा–

"मिला न वन ही न गेह ही तुझको ।"[१]

---

(१) साकेत–६ / २७३

इं० छोटेलाल वार्हस्पत्य ने १ जनवरी सन् १६११ में मैथिलीशरण जी को पत्र लिखकर ऊर्मिला विषयक् काव्य के सृजन हेतु निम्नांकित सुझाव दिये थे :–

''.......... तुलसीदास की सीता की तरह ऊर्मिला निर्गुण भी न हो।

जगह-जगह पर विरहिणी ऊर्मिला के मुख से किसी बारहमासे की लय में षड्-ऋतु-वर्णन जरूर कराना चाहिए। छंद संस्कृत हो मगर बारहमासे की तरह गाने लायक।

काव्य के प्रधान विषयों में से निम्नलिखित जरूर हों ––

ऊर्मिला-विवाह,.......लक्ष्मण का ऊर्मिला से बगैर मिले वन को जाना, ऊर्मिला विरह, हनुमान का संजीवनी लेकर जाते हुए अयोध्या में ठहरना और ऊर्मिला से लक्ष्मण का हाल कहना, ऊर्मिला का मौन विलाप,।...[1]

गुप्त जी ने ऊर्मिला के विरह–वर्णन में यार्हस्पत्य जी द्वारा दिये गए संदर्भित निर्देशों का जहाँ तक संभव हुआ पालन किया है। परिणामतः साकेत में षड्-ऋतु-वर्णन, बारहमासा एवं विरह की दस दशाओं का समुचित निर्वाह हुआ है; किन्तु यह सारा वर्णन सायास है, अनायास या नैसर्गिक नहीं लगता। इस परिप्रेक्ष्य में प्रो० (डॉ०) हरिकृष्ण अवस्थी के विचार उल्लेखनीय हैं :–

''जैसे राधेश्याम रामायण में कथावाचक जी का हाय-तौबा वर्णित है, वैसे ही 'साकेत' में ऊर्मिला और कैकेयी हाय-तौबा करतीं हैं। 'साकेत में रुदन न होकर वेदना का कथन मात्र है; जिससे पाठक रंचमात्र भाव-विभोर नहीं होता है और न ही उसमें मानवीय संवेदना जागृत होती हैं। 'साकेत' की ऊर्मिला का वियोग बैठे ठाले का वियोग लगता है।''[2]

प्रो० अवस्थी के इस कथन का मनोवैज्ञानिक कारण साकेतकार का पूर्वाग्रहस्त सोच रहा है। कवि ने पहले 'ऊर्मिला उत्ताप' या 'ऊर्मिला' नामक विरह काव्य रचना चाहा; पर अन्तर की प्रेरणा से वह इस विरह-प्रधान काव्य को महाकाव्य का रूप देने हेतु कटिबद्ध हुआ। इस प्रकार भिन्न

---

(१) मै०श० गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ– डॉ० अग्रवाल, २१६–२१७

(२) स्व० प्रो० हरिकृष्ण अवस्थी कक्षा में साकेत पढ़ाते समय ऐसे विचार व्यक्त करते थे।

मनः स्थितियों को उसने जो एकरूपता प्रदान की. वही इस काव्य में मानवीय संवेदना की कमी का कारण बनी।

'साकेत' में विरह-वर्णन मुख्यतः नवम एवं दशम सर्ग में है; फिर भी नवम सर्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस सर्ग के आरम्भ में गुप्त जी ने सर्ग के अंगी (प्रधान) रस तथा उसके औचित्य का उल्लेख इस प्रकार किया है :-

करुणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई ।
मेरी विभूति है जो उसे 'भवभूति' क्यों कहे कोई।। [१]

नवम सर्ग ऊर्मिला के रुदन पर आधारित है। इस रुदन और 'रुदन्ती' (रुदनकर्त्री) को महिमा-मण्डित करने के उद्देश्य से कवि ने एक और छंद भी दिया है :-

उस रुदन्ती विरहिणी के विरह-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिसके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के।[२]

'साकेत' में विरह के चार प्रकार-पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण-में से प्रवास-जन्य विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता है। 'साकेत' में वियोग श्रृंगार की प्रधानता है। लक्ष्मण के वन चले जाने के अनन्तर ऊर्मिला का जीवन 'रघुकुल की असहाय वधू[३] सा बन गया है; फिर भी उसने इस विरह को स्वयं स्वीकार किया है। अतः उसका प्रेम प्रिय के कर्त्तव्य-पथ का कहीं बाधक नहीं; अपितु वह अन्त तक उसका साधक है। इसीलिए ऊर्मिला का जीवन साधनामय है। यह विरह ही 'साकेत' की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। ऊर्मिला विषयक विरह-वर्णन में कवि ने जहाँ परम्परा का पालन किया है वहीं नवीनता का भी परिचय दिया है। गुप्त जी ने विरह की अन्तर्दशायें शास्त्रोक्त पद्धति से दर्शायी हैं। चौदह वर्षो की दीर्घकालीन अवधि पाठक के मस्तिष्क में उतारने हेतु कवि ने विविध प्रकार के छन्दों, ऋतुओं तथा रात-दिन के आठ यामों का भी आधार लिया है। इस

(१) साकेत-६/२६७ (२) साकेत-६/२६६ (३) साकेत-५/११६

विरह-वर्णन में ऊर्मिला की विरह-वेदना में अत्यधिक विह्वलता है। इसीलिए 'साकेत' के समीक्षकों ने इसे 'करूण विप्रलम्भ शृंगार' नाम दिया है। कवि ने अनेक स्थलों पर संयोगात्मक संस्मरण प्रस्तुत कर लक्ष्मण की विरहानुभूति को भी दर्शाया है। इस विरह-वर्णन के बहाने उसने वस्तुतः उदात्त प्रेम का जयगान किया है यथा :-

१. कोमल है बस प्रेम कठिन कर्तव्य है ....[१]

२. प्रेम की हो जय जीवन में [२]

शृंगार जैसे जीवन-व्यापी भाव के चित्रण में गुप्त जी ने बड़ी सूझबूझ का परिचय दिया है। उनकी मानस–पुत्री, सती–साध्वी ऊर्मिला पति के प्रति अटूट अनुराग वाली है। आद्योपान्त उसने पति की सच्ची सहधर्मिणी होने का प्रमाण दिया है। 'साकेत' के विरह–वर्णन में जहाँ संयम, आत्मविश्वास और अपार दृढ़ता है वहीं नायिका की विवशता, विरह की गहनता, तीव्रता एवं विह्वलता का अपूर्व सामंजस्य परिलक्षित होता हैं। समष्टि के हित-चिन्तन के लिए व्यग्र ऊर्मिला के आँसुओं के बहने से उसकी महानता, स्वभावगत उदारता तथा उसके दृष्टिकोण की व्यापकता का उत्कृष्ट परिचय मिलता है। कवि ने विरह की तीव्रता दर्शाने हेतु लाक्षणिक पदावली के साथ ही साथ उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति अलंकारों का भी आधार लिया है। विरह में प्रकृति के उपादान–चन्द्रमा, वसन्त, कुंज, भ्रमर जहाँ विरहिणी की अनुभूति को उद्दीप्त करते हैं, वहीं कवि ने प्रकृति के संवेदनात्मक चित्रण द्वारा विरह की मार्मिकता और व्यापकता को सुव्यंजित भी करते हैं। फलतः करुण रस से सम्बन्धित दृश्य, कार्य-व्यापार या व्यक्ति विशेष को देखकर दृष्टा के नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं; पर नवम सर्ग का पाठक विरह-विदग्धा ऊर्मिला की उक्तियों से कितना विचलित या भाव-विह्वल है इसे सहृदय एवं प्रबुद्ध जन भली-भाँति समझते हैं। वस्तुतः नवम सर्ग के अतंर्गत अनुभूतियों की वैसी सूक्ष्म पकड़ गुप्त जी की नहीं है जैसी गोस्वामी जी की है। नवम सर्ग की अपेक्षा अष्टम, एकादश और द्वादश प्रभृति सर्ग सहृदय पाठकों को विशेष प्रभावित करने वाले हैं।

(१) साकेत–५/११६ (२) साकेत–६/२५६

साकेत में ऊर्मिला के विरह–वर्णन में विसंगतियों के होते हुए भी अनेक उल्लेखनीय विशेषतायें भी हैं। इसीलिए विचारकों ने नवम सर्ग को साकेत की आत्मा माना है। इस सर्ग की भाव–सम्पदा ऊर्मिला के उदात्त व्यक्तित्व की परिचायक है। वस्तुतः नवम सर्ग साकेत की सर्वाधिक उल्लेखनीय मौलिक उद्भावनाओं का सर्ग है। यह मौलिकता ही नायिका की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता का मूलाधार है। इस परिप्रेक्ष्य में साकेतकार के विचार ध्यातव्य हैं जो उसने राष्ट्रपिता गाँधी को लिखे एक पत्र में व्यक्त किये थेः–

"साधारणतः विरह–वर्णन में देखा जाता है कि विरही जन सारे उद्दीपन विभावों को उपालम्भ देकर कोसा करते हैं ....किंतु ऊर्मिला इस विचार के विरुद्ध मानो विद्रोह करती है। वह सबका स्वागत करती है। प्रकृति की शोभा में उसको अपने प्रियतम का आभास दिखाई देता है।"

निरखि सखी ये खंजन आये।
फेरे उन मेरे रंजन ने नैन इधर मन भाये।
स्वागत, स्वागत शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये[१]

इस प्रकार साकेत में प्रकृति के संवेदनात्मक चित्रण द्वारा विरह की व्यापकता तथा मार्मिकता की सुन्दर व्यंजना हुई है। 'साकेत' के महत्व के मूल में उसके गीत हैं जिनमें प्रिय-विरह में विक्षिप्त ऊर्मिला की मार्मिक व्यथा भावोद्गार के रूप में व्यक्त हुई है। यह वेदना प्रेमजन्य न होकर लोक-जन्य बन गयी है। ऊर्मिला जायसी की नागमती की भाँति आत्म–बलिदान के लिए सदैव तत्पर हैः–

आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या मैं देर लगाऊँ
मैं अपने को आप मिटा कर, जाकर उनको लाऊँ।[२]

ऊर्मिला का पति हेतु आत्म–बलिदान उसके शोषण की असमर्थता नहीं; अपितु पोषण का प्रसाद है। विरहिणी की व्यष्टिवादी भावना उत्तरोत्तर विश्व-वेदना से जुड़ती गयी है। यही प्रेम की परिपक्वता एवं प्रगाढ़ता का आदर्श है।

---

(१) साकेत–६/३३६ (२) साकेत–६/२५६

गुप्त जी जीवनानुभवों के कवि थे। 'साकेत' का विरह–वर्णन भी जीवन का अभिन्न अंग है। इसमें व्यक्त कवि का जीवन–दर्शन प्रबुद्ध पाठकों को जीवन, जगत तथा काल को समझने की नवीन दृष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार 'साकेत' का विरह-वर्णन जीवन के सुख-दुःख को समझने का गुप्त जी द्वारा किया गया अभिनव प्रयोग है, जिसे उन्होंने गृहस्थ–जीवन में प्रतिफलित किया है। ऊर्मिला पति–परायणा है, अतः उसके विरह में विविध दशाओं का होना स्वाभाविक है। विरहिणी के ये आँसू उसे उदार और महान बनाते हैं। इसीलिए विरहिणी विरह को कोसती नहीं अपितु उसके प्रति आभार व्यक्त करती है।[१]

विरह के अति दीर्घकाल में विरहिणी ऊर्मिला को निश्चय ही प्रिय-अभाव झेलना पड़ा होगा। इसीलिए भाव-प्रवण कवि ने ऊर्मिला के विरह को तीव्रतर रूप देने के लिए सभी दशाओं का वर्णन किया है। यथा :–

१. अभिलाषा (१) यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम–धन जाकर मै भी रहूँ उसी वन में ।[२]

(२) अब जो प्रियतम को पाऊँ
तो इच्छा है, उन चरणों की रज मैं आप रमाऊँ।[३]

२. चिंता मन को यों मत जीतो !
बैठी है यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी भी तो!
इतना तप न तपो तुम प्यारे, जले आग सी जिसके मारे!
देखो ! ग्रीष्म भीष्म तनु धारे, जन को भी मत चीतो ![४]

३. स्मरण मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी,

---

(१) विरह संग अभिसार भी, भार जहाँ आभार भी।
x x x
जाना मैंने इस उर में है ज्वाला भी जलधार भी।......
सुध–बुध हर ली किन्तु दिया है काल ज्ञान विचार भी।
प्रिय ही नहीं, यहाँ मैं भी हूँ साथ एक संसार भी–साकेत–६/२८०
(२) साकेत–६/३२३ (३) साकेत–६/३२४ (४) साकेत–६/२८६

गमक रहा था केतकी का गंध चारों ओर,
झिल्ली–झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्व–नूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी।
चौंक देखा मैनें, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख लज्जा, उसी छाती में छिपाई थी।[१]

४. गुण–कथन (१) न कुछ कह सकी अपनी,
न उन्हीं की पूछ मैं सकी भय से,
अपने को भूले वे, मेरी ही कह उठे सखेद हृदय से ![२]

(२) मुझे फूल मत मारो।
रूप–दर्प–कंदर्प तुम्हें तो मेरे पति पर वारो।[३]

५. उद्वेग न कर वेदना सुख से वंचित, बढ़ा हृदय–हिन्दोल,
जो तेरे सुर में सो मेरे उर में कल–कल्लोल ।[४]

६. प्रलाप हाय न आया स्वप्न भी, और गयी यह रात।
सखि उडगन भी उड़ चले, अब क्या गिनूँ प्रभात।।[५]

७. उन्माद बरस घटा बरसूँ मैं संग
सरसें अवनी के सब अंग।[६]

८. व्याधि (१) सुख शांति पड़ी पीली–पीली, आँखें अशांत नीली–नीली,
क्या हाय, यही वह कृश काया या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।

(२) कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में ?[७]

९. जड़ता मानस–मंदिर में सती पति की प्रतिभा थाप।
जलती सी वह विरह में, बनी आरती आप।[८]

---

(१) साकेत–९/२६६ (२) साकेत–९/२७३ (३) साकेत–९/३१४
(४) साकेत–९/२६१ (५) साकेत–९/२८५ (६) साकेत–९/२६२
(७) साकेत–९/३०६ (८) साकेत–९/२६८

१०. मूर्च्छा सुध–बुध हर ली, किन्तु दिया है काल ज्ञान विचार भी।[1]

११. मरण और मरण भी बन जाता है कभी हिये का हार भी।[2]

साकेत के विरह वर्णन हेतु गुप्त जी संस्कृत कवि कालिदास से विशेष प्रभावित हैं। नवम सर्ग में ऊर्मिला-लक्ष्मण का प्रेम भोग से योग में परिणत हो गया है। स्वयं साकेतकार के विचार से –"................. उसी (भोगजन्य या कामजन्य) को योगजन्य अथवा रामजन्य देखने के उद्योग में साकेत की सार्थकता है।"३

निष्कर्षतः परम्परागत विरह-वर्णन और साकेत के विरह–वर्णन में दृष्टिकोण सम्बन्धी यही अन्तर उसकी उल्लेखनीय विशेषता या मौलिकता है।

(१) साकेत–साकेत–६/२८० (२) साकेत–६/२८१ (३) साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव–डॉ० सहल, १५०–५१

साकेत में गीति-योजना

गीति किसी भाव की सहज एवं सरल अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए इसमें आत्मपरकता की प्रधानता होती है। अभिप्राय यह है कि स्वानुभूत भावनाओं का चित्रण ही गीति है। गीति में कथा की अपेक्षा भाव अथवा अनुभूति का प्राबल्य होता है। गेयता इसका प्रधान गुण है। अंग्रेजी में इसे 'लिरिक' (Liric) कहते हैं। ग्रीक राष्ट्र में ''लॉयर'' नामक वाद्ययंत्र पर गाये जाने के कारण इसका नाम 'लिरिक' रखा गया था, अर्थात् गीति में संगीत–तत्व की प्रधानता होती है। इस प्रकार मुक्तक काव्य का वह रूप जिसमें गेयता एवं संगीतात्मकता के माध्यम से स्वानुभूतियों का प्रकाशन हो, गीति है।

हिन्दी में गीत, गीति और प्रगीत प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं; क्योंकि इन तीनों में ही गेयता और आत्मपरकता की प्रमुखता होती है। कवि के अन्तर्जगत में जब कोई एक भाव बड़ी तीव्रता के साथ उठता है तो रचनाकार में इतनी छटपटाहट होती है कि वह उसे गीति के रूप में व्यक्त किये बिना नहीं रहता। उसे 'भाववेग' को शब्दों का रूप देकर ही संतुष्टि मिलती है। 'साकेत' की ऊर्मिला का कथन–''यही रूदन है मेरा गान'' इसी विचार की पुष्टि करता है। इस परिप्रेक्ष्य में कतिपय काव्य-पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं :–

गीति तुम कहते जिसे हो, प्रेरणा का व्रण है आकुल।
और है वह शक्ति जिससे, वेदना व्रण भी सके धुल।।

चाहे कोई लिखे, किसी के लिए लिखे,
पर जन्म गीत का सदा दर्द से होता है,
अब तक का तो कहता है इतिहास यही,
कवि पीछे लिखता पहले तो रोता है।

उपर्युक्त काव्यांशों से स्पष्ट है कि हृदय की वेदना का तीव्र वेग ही गीति काव्य का प्राण है, मूलतत्व है। इसीलिए अंग्रेजी कवि विलियम वर्ड्स वर्थ ने कविता को परिभाषित करते हुए, उसमें भाववेग पर सर्वाधिक बल दिया है :—

"Poetry is a spontaneous overflow of Powerful Feelings."

अतः आन्तरिक प्रेरणा, तीव्र भावावेग, आत्म-प्रधानता, गेयता, रागात्मक अन्विति तथा शैली तत्व ये सभी गीति काव्य के प्रमुख अंग हैं। इसी प्रकार हृदय की प्रधानता, तीव्र भावाभिव्यक्ति, मार्मिकता, संक्षिप्तता, सुकुमारता और स्पष्टता गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं।

कविता हृदय का व्यापार है। व्यक्तिगत सुख-दुखात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने का सबसे सुन्दर और सफल माध्यम कविता है। यह कविता जब सुर, लय और ताल से युक्त हो जाती है तो प्रभाव और उसकी मारक-शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है और तभी वह कविता एक नये नाम से जानी-पहचानी जाने लगती है। उसका यह नया रूप ही गीत है। मैथिलीशरण गुप्त अत्यन्त गुणग्राही थे। उन्हें जहाँ-कहीं का जो भी विशेष अच्छा लगता, उसे आत्मसात् करने में वे किंचित् भी संकोच नहीं करते थे। उनके प्रबन्ध काव्य 'साकेत' में भी गीत काव्य की अजस्र धारा प्रवाहित होती दृष्टिगत होती है।

हिन्दी में गीत काव्य की तीन प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं :—

(१) पद-पद्धति या शैली (२) प्रगीत-पद्धति (३) सम्बोधन गीत-पद्धति

कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के पद जो जनमानस में व्याप्त हैं, पद शैली के उदाहरण हैं। प्रगीत शैली आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य में प्रयुक्त हुई है। मैथिलीशरण, प्रसाद, पन्त, महादेवी और निराला प्रभृति कवि इस शैली के प्रमुख प्रयोगकर्त्ता हैं। सम्बोधन गीत की शैली भी आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य में उपलब्ध होती है। इस शैली के लिए वे कीट्स जैसे अंग्रेजी कवियों से प्रभावित हैं। सम्बोधन गीत-शैली में रचनाकार किसी वस्तु अथवा पदार्थ को सम्बोधित करता हुआ अपने अन्तर्मन के भावों को बेहिचक व्यक्त करता है। 'साकेत' के नवम एवं दशम सर्ग में इस शैली को विशेष महत्व दिया गया है।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में प्रगीत और सम्बोधि गीति दोनों

का अच्छा प्रयोग किया है। गीति शैली को अपनाने के लिए उन्हें पद-शैली से प्रभावित मानना असंगत न होगा। 'साकेत' के अष्टम, नवम एवं दशम सर्गो में गीत-शैली के सम्यक् निर्वाह ने साकेत को नव्य एवं भव्य रूप प्रदान किया है। उदाहरण के लिए आठवें सर्ग के अन्तर्गत सीता का–"मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया"[१] प्रगीति शैली का अच्छा उदाहरण है। वस्तुतः यह राधिका छन्द है लेकिन इसकी प्रस्तुति साकेतकार ने इस मोहक अंदाज में की है कि भावज्ञ पाठक इस प्रगीति में व्यक्त भावों में सुध-बुध खो बैठता है।

इस प्रगीति में सीता की स्वालम्बन-भावना, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम एवं उदारवादी दृष्टिकोण इत्यादि कितनी ही उनकी चारित्रिक विशेषताओं का ऑकलन किया जा सकता है। यह प्रगीति तत्कालीन जनजीवन और उसके सामाजिक सोच से आवृत्त है।

'साकेत' का नवम सर्ग तो बहुमूल्य सम्बोधि गीतों का अक्षय भण्डार है। गीत में हृदय की सुकुमार भावनाओं की प्रधानता तो होती ही है, साथ ही वे यथार्थ की भावभूमि पर पूर्णतः आधारित होते हैं। इनमें गेयता एवं संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। अभिप्राय यह है कि सुर, ताल और लय से युक्त कविता गीत है। ये गुण 'साकेत' के नवम सर्ग में सर्वत्र विद्यमान हैं।

पूर्णता और संक्षिप्तता मुक्तक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। साकेत के गीतों में वह विद्यमान हैं; गीत का चाहे जो रूप हो, वह मुक्तक काव्य का उदाहरण होता है। साकेत में विलक्षणता यह है कि वह प्रबंध काव्य है। प्रबंधकाव्य होते हुए भी गीति और सम्बोधि गीतियों का सम्यक् निर्वाह अपने आप में विलक्षण है।

गीत, प्रगीत और सम्बोधि गीतियों की परम्परा के लिए विचारक प्रायः अंग्रेजी प्रभाव को स्वीकार करने में ही अपना गर्व समझते हैं; जबकि वास्तविकता यह है कि हिन्दी कवियों पर यह प्रभाव सीधे या प्रत्यक्ष नहीं है; बल्कि इन कवियों ने इस शैली को अपनाने के लिए कवीन्द्र रवीन्द्र को आदर्श माना है; क्योंकि उन्हीं दिनों उनकी 'गीतांजलि' का नोबुल पुरस्कार हेतु चयन हुआ था। मैथिलीशरण जी को गीति काव्य-सृजन की प्रेरणा टैगोर से भी कहीं अधिक माइकेल मधुसूदन दत्त से प्राप्त हुई थी।

---

(१) साकेत, पृ० ८/२२२–२२५

गुप्त जी द्वारा माइकेल के अनेक काव्यों का अनुवाद करना इस बात का प्रमाण है कि उनके गीति और प्रगीति के मुख्य प्रेरक वस्तुतः मधुसूदन दत्त ही थे।

मैथिलीशरण गुप्त टैगोर से सीधे परिचित थे। टैगोर के काशी आने पर राय कृष्ण दास जी ने मैथिलीशरण जी से उनका परिचय कराया था। तभी से वे टैगोर के भक्त बन गये थे। उन्होंने कामायनी के प्रकाशन के पूर्व प्रसाद को जब इसमें प्रगीत और सम्बोधि गीतियों का प्रयोग करते देखा तो वे भी 'साकेत' में गीतों का प्रयोग करने का मोह संवरण न कर सके।

नवम सर्ग में सम्बोधि गीतियों की भरमार है; जिनमें गीत के समस्त तत्व अपनी नैसर्गिक छटा बिखेरते दिखाई देते हैं। इन सम्बोधि गीतियों या प्रगीतों में विरहिणी के हृदय की घुमड़न, घुटन और टूटन तो व्यक्त हुई ही है, इसके अतिरिक्त इसके निराले व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का सहज उद्घाटन भी हुआ है–"ओ गौरव गिरि उच्च उदार" जैसे सम्बोधि गीति में ऊर्मिला की आस्था, विश्वास और महत्व की स्वीकारोक्ति के साथ ही साथ चित्रकूट-महिमा, उसकी गरिमा, वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता तथा कवि का देश-प्रेम सभी एक साथ व्यक्त हुए हैं।

प्रायः गीतों में सरल शब्दावली का प्रयोग किया जाता है; पर गुप्त जी ने चित्रकूट के विराट व्यक्तित्व को साकारता प्रदान करने में जिन क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है; उनसे चित्रकूट की उच्चता और उदारता को व्यक्त करने में उन्हें उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। यथा :–

तू निर्झर का डाल दुकूल,
लेकर कंदमूल – फल – फूल,
स्वागतार्थ सबके अनुकूल,
खड़ा खोल दरियों के द्वार
ओ गौरव गिरि उच्च उदार।।[१]

चित्रकूट की यही मान्यता है कि वह सबका स्वागत करने हेतु सदैव तत्पर रहता है। प्रिय का अभाव और अदर्शन ऊर्मिला की पीड़ा का मूल कारण है। इस पीड़ा ने ही उसको अत्यन्त भाव-प्रवण बनाया है। उसके मानसिक चिन्तन में आयी विराटता एवं कातरता विरह की

(१) साकेत–९/२७५

महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस भाव-दशा को प्राप्त करने पर ही उसने जीवन के वास्तविक स्वरूप तथा उसकी सार्थकता को अनुभव किया है:–

जाना मैंने इस उर में थी ज्वाला भी, जलधार भी,
प्रिय ही नहीं यहाँ मैं भी थी, और एक संसार भी![1]

'साकेत' प्रबन्धकाव्य है। गीत मुख्यतः मुक्तक विधा के अन्तर्गत आता है। हिन्दी के आधुनिक कवियों ने इस शैली का प्रयोग अपने खण्डकाव्य एवं महाकाव्य तक में किया है। मैथिलीशरण के 'साकेत' में गीत-शैली के प्रयोग की बहुतायत है। 'साकेत' में गीत हैं, प्रगीति, सम्बोधि गीति एवं पद्य गीत भी। अभिप्राय यह है कि गुप्त जी ने साकेत में विविध गीतों का विविध रूपों में प्रयोग किया है, इन सब में सम्बोधि गीति का प्रयोग सर्वाधिक है।

'साकेत' का नवम सर्ग काव्य-सौन्दर्य के लिए अपनी अलग पहचान रखता है। उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगाने वाले यही गीति, प्रगीत और सम्बोधि गीति हैं जिन्होंने नवम सर्ग को शैलीगत सरसता, मधुरता, संगीतमयता तथा प्रवाहमयता प्रदान की है। भावानुकूल शब्द-योजना और मधुर पदावली ने 'साकेत' के काव्य सौन्दर्य में निश्चय ही वृद्धि की है। लोक-प्रचलित कहावतों एवं मुहावरों का नैसर्गिक प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त भारतीय जनजीवन, संस्कृति और लोकसंस्कृति का भी सम्यक् निर्वाह है। प्रायः भावों की सुकुमारता, मनोरमता और रसमयता इसके पाठकों को अभिभूत कर देती है। इस प्रकार 'साकेत' की गीति-योजना में पूर्ववर्ती भक्त कवियों की पद–शैली तथा छायावादी कवियों जैसी गीति-प्रगीति एवं सम्बोधि गीति शैली का सामंजस्य है। 'साकेत' के इन गीतों में प्रेम की सुखात्मक एवं दुखात्मक सूक्ष्म अनुभूतियों के साथ ही साथ देशभक्ति, भगवद्-भक्ति; पर-दुखकातरता, लोकहित एवं करुणा इत्यादि विशेषताओं का मोहक निर्वाह है। इनमें अनुभूति की गहनता, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, कलात्मकता और सरसता का अच्छा निर्वाह हुआ है। 'साकेत' की गीति-योजना में सुस्पष्टता, तरलता, सरलता एवं सरसता का सुन्दर सामंजस्य है।

---

(१) साकेत–९/२८१

'साकेत' के अनेक प्रगीति और सम्बोधि गीति लोक प्रचलित, मार्मिक एवं प्रेरणादायक हैं। –''**वेदने तू ही भली बनी,**[१] इसी परम्परा का सम्बोधि गीति है। लय, तान और नाद-सौन्दर्य से युक्त इस गीति में शब्दों का जहाँ भावानुकूल प्रयोग हुआ है वहीं 'दृगम्बु सनी'; अदृष्टि जनी' तथा ''उपमोचितस्तनी' जैसे क्लिष्ट एवं अव्यावहारिक शब्दों के प्रयोग से गीत की सुकुमारता, प्रवाहमयता एवं संगीतात्मकता बाधित हुई है। इसमें कवि के कल्पना–शैथिल्य का भी पाठक को सहज परिचय मिलता है–''**विरह संग अभिसार भी**'[२] गीति है जो सूर, तुलसी की पद-पद्धति से प्रभावित है; पर इसमें पूर्ववर्ती कवियों जैसा आत्मनिवेदन न होकर वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता है। ''साकेत'' में आरम्भ से अन्त तक गीति के लक्षणों का सम्यक् निर्वाह गुप्त जी नहीं कर पाये। इस गीति में-'**गार दिया है**' 'जना दिया है' जैसे प्रयोगों के कारण पाठक के मन में बनते भाव-चित्र बिखर गये हैं।

(१) साकेत–६/२८० (२) साकेत–६/२८१

साकेत का काव्य-शिल्प

आचार्यों ने काव्य के दो पक्ष माने हैं– भाव पक्ष और कला पक्ष। भाव पक्ष कविता की आत्मा है और कला पक्ष उस भाव या अर्थ रूपी आत्मा को सहेजने वाला कलेवर या शरीर है। बिना आत्मा के जैसे शरीर निष्प्रयोज्य और त्याज्य है; वैसे ही बिना कलेवर के आत्मा का आधार अथवा सुरक्षित स्थान सम्भव नहीं। अभिप्राय यह है कि कविता में दोनों का महत्व है। दोनों एक दूसरे का सजाव और श्रृंगार करते हैं। इनकी घनिष्ठता पर ही काव्य का उत्कर्ष और महत्व सम्भव है।

मैथिलीशरण कविता के अनुभूति और अभिव्यक्ति-दोनों पक्षों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध तथा महत्व से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए उन्होंने कविता के उभय पक्षों का ध्यान रखते हुए साकेत काव्य की सृष्टि की है। यहाँ साकेत के शिल्प विधान पर विचार करना हमारा उद्‌देश्य है।

काव्य भाषा

भाषा भावों और विचारों की संवाहिका होती है। बिना भाषा के सभी भाव या विचार अमूर्त हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं। इन्हें प्रत्यक्ष, यथार्थ या स्वाभाविक रूप देने में भाषा की भूमिका सर्वोपरि होती है। गद्य भाषा और पद्य भाषा में भी बहुत बड़ा पार्थक्य होता है। गद्य में किसी बात को कहना अधिक सरल है अपेक्षाकृत पद्य के। ऐसी स्थिति में भाषा की भूमि्का और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों या विचारों को व्यक्त करना होता है। इस कार्य को व्यावहारिक रूप देते हैं शब्द। शब्द को ब्रह्म भी कहा गया है। यह शब्द ब्रह्म अंतर की प्रेरणा से निकलता है। इसीलिए उच्चकोटि की कविता में शब्द-चयन और उसके प्रयोग का बड़ा महत्त्व होता है। महाकाव्य की भाषा भी उदात्त होनी चाहिए क्योंकि भाषा महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों में से एक है।

साकेतकार की लोकप्रियता के प्रमुख कारणों में से एक कारण उसकी सम्प्रेषणीय भाषा है। मैथिलीशरण की काव्यभाषा हिन्दू संस्कारों में पूर्णतः सिक्त दीक्षित या ढली हुई है। आधुनिक खड़ीबोली के हिन्दी

काव्यों की एक उल्लेखनीय त्रुटि यह है कि उनमें लोक प्रचलित मुहावरों और कहावतों के प्रयोग का अभाव है। किसी भी काव्य में मुहावरों का प्रयोग अभिव्यक्ति को सरलता, प्रवाहमयता तथा व्यापक प्रभाव प्रदान करता है। गुप्त जी के साकेत में भी मुहावरेदार भाषा का अभाव है; पर उतना नहीं, जितना कि खड़ीबोली के अन्य कवियों के काव्य में। गुप्त जी मुहावरों के प्रयोग में छायावादी कवियों से भी आगे हैं। साकेत में प्रयुक्त कतिपय मुहावरे द्रष्टव्य हैं:—

(१) चन्द्रकांत मणियाँ हटा, पत्थर मुझे न मार।[1]
(२) अपना पानी भी नहीं रखता अपनी बात।[2]

मानस के कैकई-मंथरा प्रसंग में तुलसी ने मुहावरों की झड़ी लगा दी है। गुप्त जी ने भी उसी आदर्श का कैकई-मंथरा-प्रसंग में निर्वाह करने का प्रयास किया है। यथा:—

१. भरत की माँ हो गयी अधीर,
क्षोभ से जलने लगा शरीर।[3]
२. ठोंककर अपना क्रूर कपाल,
जता कर यही कि फूटा भाल।[4]
३. उड़ाती है तू घर में कीच,
नीच ही होते हैं बस नीच।[5]
४. कहा दासी ने धीरज त्याग
"लगे इस मेरे मुँह में आग।"[6]

इस प्रकार काव्य में मुहावरों का प्रयोग अभिव्यक्ति की शक्ति बढ़ा देता हे। इसे उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर भली-भाँति समझा जा सकता है। साकेत में प्रयुक्त खड़ीबोली की एक और विशेषता उसकी एकरूपता है। गुप्त जी ने सर्वत्र एक जैसी भाषा का प्रायः प्रयोग किया है। उनकी काव्यभाषा नवजागरण के उस युग में युगानुरूप नवीन प्रगतिशील विचारों को व्यक्त करने में अहम् भूमिका निभा रही थी। इस प्रकार खड़ीबोली काव्य भाषा के विकास में गुप्त जी के ऐतिहासिक योगदान को सभी

(१) साकेत—६/२८८ (२) साकेत—६/३२३ (३) साकेत—२/५३ (४) साकेत—२/४५ (५) साकेत—२/४७ (६) सकेत—२/४६

की ओर से स्वीकार करते हुए कवि नीरज ने उनके प्रति उद्‌गार यूँ व्यक्त किये हैं –

'बोली पड़ी, खड़ी की तुमने।'

काव्य में भाषा का असाधारण एवं चमत्कारपूर्ण प्रयोग होता है। उदारवादी गुप्त जी ने साकेत की काव्यभाषा में तत्सम, तद्‌भव एवं देशज सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। स्वधर्म और स्वसंस्कृति के प्रति विशेष निष्ठां के कारण साकेत की काव्य भाषा में आये तत्सम शब्द अधिकांशतः पूर्ण व्यावहारिक हैं। यथा-दधि, घृत, मिष्ठान्न, जम्बूफल, पराग तथा अंगराग इत्यादि। पारिवारिक और सामाजिक परिवेश के अनुसार भी गुप्त जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग का एक प्रमुख कारण रामकथा का त्रेतायुगीन होना है अर्थात् युगानुकूल भाषा के प्रयोग को गुप्त जी ने सर्वथा उचित माना है।

तद्‌भव शब्द किसी भी भाषा का निजी शब्द भांडार होता है। जो शब्द संस्कृत और प्राकृत से विकृत होकर हिन्दी में आये हैं उन्हीं को तद्‌भव कहा गया है। गुप्त जी के साकेत की भाषा में ऐसे शब्दों की भरमार है। यथा-कपूर, जेठ एवं बत्ती इत्यादि। गुप्त जी ने अनुकरणवाचक शब्दों का भी साकेत में प्रयोग किया है। यथा – **दिर–दार–दारा**[1] इसी प्रकार तड़क, भड़क, कड़क।

विश्व की प्रत्येक समृद्धिशाली भाषा के शब्द–भांडार में तत्सम, तद्‌भव, और विदेशी सभी प्रकार के शब्द होते हैं। इसीलिए शब्द-ग्रहण करने में उदारता होनी ही चाहिए। गुप्त जी उदारवादी भी थे और प्रगतिशील भी। इसलिए वे राष्ट्रीय-भावना के मूर्तिमंत स्वरूप थे। साकेत की भाषा में देशज या ग्रामीण अथवा आंचलिक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। विशेष रूप से बुंदेली शब्दों और मुहावरों का प्रयोग इसी परिप्रेक्ष्य में हैं। यथा-ठीक ठनी, हा हा खाऊँ इत्यादि इसी के उदाहरण हैं। ब्रजभाषा और कुछ अवधी के भी शब्दों को साकेत में स्थान मिला है। यथा-मचिया, ठौर, सहेजा, चिहुँका, ऊना, तत्ती, जूझना तथा कोख इत्यादि। साकेत का कथानक पौराणिक होने के कारण आलोच्य काव्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग काल-दोष होता, इसीलिए कवि ने उन्हें लेशमात्र महत्व नहीं दिया।

---

(१) साकेत–साकेत–६ / २६६

शब्द-शक्ति

शब्द शक्ति का अर्थ शब्दों में अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करने वाली शक्ति से है। साकेत में सभी प्रकार की शब्द-शक्तियाँ और उनके भेद प्रभेद उपलब्ध होते हैं; फिर भी प्रमुख शब्द-शक्तियों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है—

१. अभिधा— प्रमाणों में जो महत्व या स्थिति प्रत्यक्ष की है वही शब्द-शक्तियों में अभिधा की है। सम्पूर्ण साकेत में इसके रूप को लगभग सभी कहीं देखा जा सकता है। यथाः—

कल प्रिये निज आर्य का अभिषेक है,
सब कहीं आनन्द का अतिरेक है।[1]

२. लक्षणा— किसी पद या पद—समूह का साक्षात् सांकेतिक अर्थ जब अभिधा द्वारा न स्पष्ट हो तो रुढ़ि जिस शब्द-शक्ति द्वारा वह लक्षित हो उसे लक्षणा कहते हैं। यथाः—

१. शिशिर न फिर गिरि—वन में,
जितना माँगे पतझड़ दूँगी मैं इस नन्दन में।[2]
२. जाग उठे हैं मेरे सौ सौ स्वप्न स्वयं हिल-डोल।[3]

३. व्यंजना— जिस शब्द—शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध हो वह व्यंजना शब्द—शक्ति है। यथाः—

चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु-सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग—जाल बनकर बाल।[4]

छंद

छंद का सामान्य अर्थ बंधन है। कविता को मर्यादा के बंधन में बाँधने के माध्यम का नाम छंद है। वनिता की भाँति कविता भी स्वच्छंद न हो; बल्कि अपने मर्यादामयी स्वरूप द्वारा साहित्यिक समाज में गरिमामय हो. इस प्रयोजन से विचारकों ने छंद को काव्य का श्रृंगार कहा है। छंद रूपी मर्यादा में बँधकर कविता—कामिनी अद्भुत सौंदर्यमयी बनती है और उसकी गति सहृदय पाठक या भावज्ञ के मन में मनोमुग्धकारी झंकार की सृष्टि करती है।

---

(१) साकेत—१/३३ (२) साकेत—६/३०६ (३) साकेत—६/२६१ (४) साकेत—१/४१

गुप्त जी को पिंगलशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। तुलसी की भाँति उन्होंने भी अपने समय तक की काव्य शैलियों को इस महाकाव्य में समाहित किया है। नवम सर्ग तो छंदों का अजायबघर ही है। आलोच्य काव्य में कवि ने वर्णिक और मात्रिक-दोनों प्रकार के छंदो को अपनाया है। यही नहीं, गुप्त जी ने स्वयं भी छंद की रचना कर अपनी असाधारणता का परिचय दिया है।

साकेत महाकाव्य है। अतः उसके हर सर्ग में (नवम सर्ग को छोड़कर) एक ही प्रकार के छंद की प्रधानता है। साकेत के प्रथम सर्ग के मंगलाचरण में मनहरण छंद है, शेष सारा सर्ग पीयूषवर्ष छंद में है।[१] द्वितीय सर्ग में शृंगार छंद का प्रयोग हुआ है। तृतीय सर्ग सुमेरु छंद से युक्त है। चतुर्थ सर्ग के अन्तर्गत कवि ने विशेष रूप से हाकलि छंद का प्रयोग किया है। सर्ग के अंत में सार छंद का प्रयोग है। पंचम सर्ग में तिलोकी नामक छंद का प्रयोग किया गया है। षष्ठ सर्ग पादाकुलक छंद से युक्त है। साकेत के सप्तम सर्ग में कवि ने भावों की तीव्रता एवं गति आदि को ध्यान में रखकर चन्द्र छंद का प्रयोग किया है। अष्टम सर्ग में भव्यता और विशालता के चित्र को अंकित करने हेतु राधिका छंद को अपनाया गया है। नवम सर्ग में छंदों का वैविध्य और वैचित्र्य गुप्त जी के छंदाधिकार का परिचय कराता है।[२] कालिदास से प्राप्त प्रेरणा के आधार पर दशम सर्ग में वियोगिनी नामक वर्णिक छंद अपनाया गया है। महाकाव्य के एकादश सर्ग में वीर छंद और मात्रिक सवैया का प्रयोग हुआ है। प्रबंध काव्य के अंतिम अर्थात् द्वादश सर्ग में रोला छंद का प्रयोग इसलिए किया गया है; ताकि अयोध्यावासियों के ओज-तेज एवं पराक्रम का अच्छे ढंग से उल्लेख हो सके। इस प्रकार कवि ने इस महाकाव्य में नाना प्रकार के छंदों को अपनाकर अपनी काव्यशास्त्रीय असाधारणता का परिचय दिया है।

अलंकार-योजना

अलंकार का सामान्य अर्थ है– आभूषण। नारी के शारीरिक सौन्दर्य में जो स्थान आभूषणों का है, कविता की सौन्दर्य-वृद्धि में वही महत्व अलंकारों का है। रीतिकालीन अधिकांश कवि चमत्कार द्वारा अपनी असाधारणता का बोध कराने के लिए चमत्कार-प्रधान शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का विशेष प्रयोग करते थे। उनके द्वारा ऐसा करने से

(१) विशेष के लिये दे०—साकेत प्रथम सर्ग का वैशिष्ट्य (२) विशेष सामग्री के लिये दे०– नवम सर्ग का काव्य-वैभव

कविता का नैसर्गिक सौन्दर्य बाधित होता था। अधुनातन हिन्दी कविता में अलंकारों की विशेष चमक-दमक को कवियों ने अनावश्यक समझा है। इसीलिए आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार प्रायः अनायास ही आये हैं सायास नहीं। गुप्त जी सादगी की मूर्ति थे। सायास अलंकार प्रयोग उनके स्वभाव के विपरीत था। अतः साकेत में भी अलंकारों की विशेष चमक-दमक नहीं है; बल्कि गुप्त जी का उपमान-विधान सरल और महत् है। उसमें नैसर्गिक-सौंदर्य की प्रधानता है। विद्वानों ने साकेत के नवम सर्ग को उसका काव्य-वैभव कहा है। वैसे इस सर्ग में छंदों की भाँति यत्र-तत्र अलंकारों का सायास प्रयोग हुआ प्रतीत होता है; किन्तु बहुत अधिक नहीं।

अलंकारों के प्रयोग में गुप्त जी को परम्परावादी और प्रयोगधर्मी एक साथ कहा जा सकता है। लोक प्रचलित शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के प्रयोग के साथ ही साथ गुप्त जी ने मानवीकरण और ध्वन्यार्थ व्यंजक तथा विशेषण विपर्यय जैसे नये अलंकारों का भी साकेत में प्रयोग किया है। सर्वप्रथम साकेत में प्रयुक्त शब्दालंकारों की चर्चा उचित होगी, क्योंकि कवि ने इनका प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है।

जब कवि शब्दों के द्वारा कविता में चमत्कार उत्पन्न करता है तो वहाँ शब्दालंकार होता है। ऐसे अलंकार की सृष्टि में ध्वनि का विशेष महत्व होता है। इसे काव्य का संगीत–धर्म कहा गया है। साकेत में अनुप्रास, यमक, श्लेष और पुनरुक्ति, जैसे अलंकारों के प्रयोग से साकेत काव्य का महत्व बढ़ा है। सर्वप्रथम साकेत का बहुत प्रचलित छंद प्रस्तुत है जो श्लेष अलंकार का अच्छा उदाहरण है। यथा :–

उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।[१]

काकुवक्रोक्ति अलंकार के उदाहरण स्वरूप उपर्युक्त छंद का उत्तरार्द्ध प्रस्तुत है–

वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?[२]

प्रसिद्धि के इसी क्रम में नवम सर्ग का एक अन्य छंद भी प्रस्तुत है जो मुद्रालंकार का अच्छा उदाहरण है–

करुणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई–
मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई?[३]

---

(१) साकेत–६ / २६६ (२) साकेत–६ / २६६ (३) साकेत –६ / २६७

नायिका ऊर्मिला द्वारा बनाये अद्भुत चित्र के सम्बन्ध में कवि ने यमक अलंकार का अच्छा प्रयोग किया है–

चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गए चित्रस्थ-से सौमित्रि भी।[१]

शब्दालंकारों में अनुप्रास और उसके विविध भेद सर्वाधिक प्रिय माने गये हैं। कवि गुप्त ने इसीलिए साकेत में इनका विशेष प्रयोग किया है।

छेकानुप्रास – लपट से झट रूख जले, जले, नद नदी घट सूख चले; चले।
विकल वे मृग-मीन मरे मरे, विफल ये दृग दीन भरे, भरे।[२]

वृत्यानुप्रास– निर्मल जल अन्तःस्तल भरके, उछल उछल कर छल छल करके।
थल थल तरके, कल कल धरके, बिखराता है पारा–
सखि, निरख नदी की धारा।[३]

कविता में शब्दालंकार शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करते हैं, इसके विपरीत अर्थगत चमत्कार की सृष्टि करते हैं। जहाँ शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य-वैभव में वृद्धि करते हैं वहाँ उभयालंकार होता है। मैथिलीशरण जी ने शब्दालंकारों की भाँति अर्थालंकारों का भी साकेत में भरपूर प्रयोग किया है जिससे निश्चय ही साकेत काव्य के अर्थ–गौरव में वृद्धि हुई है। अर्थालंकार के लगभग सभी भेद साकेत में प्रयुक्त हुए हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

१. उपमा– पड़ी थी बिजली–सी विकराल,
लपेटे थे घन जैसे बाल।[४]

साकेत में उपमा के सभी रूप प्रयुक्त हुए हैं। पूर्णोपमा का एक उदाहरण ध्यातव्य है :–

चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु-सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग-जाल बनकर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।[५]

२. अनन्वय– और इसका हृदय किससे है बना?
वह हृदय ही है कि जिससे है बना।[६]

---

(१) साकेत–१/३४ (२) साकेत–६/२८७ (२) साकेत–६/३०२ (३) साकेत–२/६१
(४) साकेत–१/४१ (५) साकेत–१/२७

३. सांगरूपक— एवं मानवीकरण

तू निर्झर का डाल दुकूल,
लेकर कन्द-मूल-फल-फूल,
स्वागतार्थ सबके अनुकूल,
खड़ा खोल दरियों के द्वार,
ओ गौरव—गिरि, उच्च—उदार![१]

४. परम्परित रूपक—

दास की यह देह-तंत्री सार दे,
रोम तारों में नयी झंकार दे।[२]

साकेत में उत्प्रेक्षालंकार के सभी रूप उपलब्ध होते हैं। वस्तूत्प्रेक्षा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े, हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानों बने, मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।[३]

५. भ्रांतिमान—

नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?[४]

६. अतिशयोक्ति—

ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग![५]

७. दृष्टान्त—

एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा,
सूर्य का आना सुना जब, तब मिटा।[६]

८. व्यतिरेक—

कहती मैं चातकि, फिर बोल,
ये खारी आँसू की बूँदे दे सकती यदि मोल!
कर सकते क्या मोती भी उन बोलों की तोल?[७]

९. विरोधाभास—

हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[८]

१०. विभावना— सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ, किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चुके, रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चुके।[९]

---

(१) साकेत-६/२७५ (२) साकेत-६/२८७ (३) साकेत-१/३७ (४) साकेत-१/२६
(५) साकेत-६/२६० (६) साकेत—१/२४ (७) साकेत—६/२६१ (८) साकेत—१/१८
(९) साकेत—१/२४

गुण

कविता में गुणों का विशेष महत्व है। ये रसानुभूति की प्रगाढ़ता और उत्कर्ष में विशेष सहायक होते हैं। आचार्य दंडी ने तो गुण को कविता का प्राणतत्व माना है। मम्मट ने काव्य प्रकाश में भरत मुनि, दंडी और भोजराज को नकारते हुए मात्र तीन प्रमुख गुण माने हैं–

१. प्रसाद गुण– जब कविता को पढ़ते या सुनते ही उसका अर्थ या भाव तुरंत समझ में आ जाय वहाँ प्रसाद गुण होता है। यथा :–

बन में ही यदि रहना है तो नृप का यह कहना है–
तुम सुमंत्र रथ ले आओ पुत्रों को पहुँचाओ।[१]

२. ओज गुण– किसी रचना को पढ़ते या सुनते ही जब स्फूर्ति, तेज या आवेश का भाव जागृत हो जाय वहाँ ओज गुण होता है। प्रायः वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में इस गुण की प्रधानता होती है। साकेत के तृतीय और द्वादश सर्ग में ओज गुण की प्रधानता है। यथा :–

नहीं अधिकार अपना वीर खोते, उचित आदेश ही हैं मान्य होते।
खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह, अनार्या की जनी हत भागिनी यह।[२]

३. माधुर्य गुण– भक्ति, श्रृंगार और शांत रसों में प्रायः कोमलकांत पदावली या भाषा के प्रयोग से माधुर्य गुण की सृष्टि होती है। जहाँ मधुरता है, कोमलता है या मिठास है, वहीं माधुर्य गुण का निवास है। यथा :–

झलकता आता अभी तारुण्य है,
आ गुराई से मिला आरुण्य है।.......
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी
दमकती है दामिनी सैी द्युति भरी।[३]

साकेत के काव्य पक्ष से सम्बन्धित इस विस्तृत विवेचना से स्पष्ट है कि इस काव्य का भावपक्ष जितना समृद्ध है उतना ही कलापक्ष भी। कलापक्ष की समृद्धता ने कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति में चार-चाँद लगाये हैं।

---

(१) साकेत–४/११३ (२) साकेत–३/७८ (३) साकेत–१/२७

साकेत : द्विवेदी युग का प्रतिनिधि काव्य

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि रचनाकार थे। इस युग की सम्पूर्ण विशेषताएं अगर किसी एक कवि की किसी कृति में देखनी हों तो उसके लिए गुप्त जी का 'साकेत' काव्य पर्याप्त है। मैथिलीशरण जी युगनायक आचार्य द्विवेदी के परम प्रिय शिष्य थे। वस्तुतः उनकी कृपा या आशीर्वाद ने ही गुप्त जी को इतना समर्थ रचनाकार बनाया कि वे "राष्ट्रकवि" बन सके। मैथिलीशरण जी ने आचार्य द्विवेदी के महत्व को सहर्ष स्वीकार करते हुए साकेत की भूमिका में कहा भी है :–

करते तुलसी दास भी कैसे मानस-नाद?
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।[1]

द्विवेदी जी युग-द्रष्टा ही नहीं; अपितु युग-स्रष्टा भी थे। आचार्यत्व उनके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग था। उन्होंने अपने को नहीं, बल्कि लोक को उठाने में ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दाँव पर लगायी थी। "सरस्वती" की जैसे सेवा उन्होंने की वैसी आज तक दूसरा कोई सम्पादक नहीं कर सका। इसीलिए विद्वानों ने द्विवेदी जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उनके "सरस्वती-सेवा काल" को "द्विवेदी काल" या "द्विवेदी-युग" नाम देकर आचार्य प्रवर के प्रति अपनी सच्ची निष्ठा व्यक्त की है।

द्विवेदी जी साहित्य पुरोधा थे और सिद्धान्तवादी भी। वे मूल्यों के साथ समझौता करने वाले सामान्य व्यक्ति न थे। उनके व्यक्तित्व की इसी असाधारणता ने उन्हें जो गौरव–गरिमा प्रदान की, वह भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य किसी साहित्यकार को सुलभ न हो सकी।

---

(१) साकेत–निवेदन, २

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हर युग अपनी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं के कारण अलग पहचान बना सका। द्विवेदी युग उनमें से एक है। इसका काल मात्र दो दशकों का है पर उन दो दशकों का महत्त्व दो शताब्दियों से कम नहीं। इस युग की पहली महत्वपूर्ण विशेषता या प्रवृत्ति यह रही कि द्विवेदी काल के रचनाकार का उद्‌देश्य पाठकों का मात्र मनोरंजन करना नहीं; अपितु उन्हें उचित उपदेश देना भी था। अभिप्राय यह है कि इस युग का काव्य संदेश-प्रधान था। केवल यथार्थ को प्रधानता देना और 'कला कला के लिए है' यह फतवा देकर पश्चिम का अंधानुकरण करना गुप्त जी को अभिप्रेत न था। इसीलिए उन्होंने द्विवेदी युग के प्रतिनिधि महाकाव्य 'साकेत' में कहा भी हैः–

जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा।
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।[1]

इस प्रकार साहित्य का उद्‌देश्य लोकमंगल मानते हुए द्विवेदी युग में कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया। गुप्त जी कृत "साकेत" लोकमंगल की उदात्त भावना से अनुप्राणित काव्य है। राम, सीता, कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण एवं ऊर्मिला सभी इसी उद्‌देश्य हेतु समर्पित हैं। यदि लक्ष्मण भ्रातृ-भाव का आदर्श प्रस्तुत करने हेतु कृत संकल्प हैं तो ऊर्मिला भी इस कार्य में उनका पूर्ण सहयोग करना चाहती है। यथाः–

वन में तनिक तपस्या करके
बनने दो मुझको निज योग्य।
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है संतोष।[1]

---

(१) साकेत–१/३७ (२) साकेत–८/२६५

इस प्रकार ऊर्मिला का प्रेम पति की कर्तव्य-परायणता में बाधक नहीं अपितु साधक बनता है। वह पति को लोक-संग्रह हेतु **''मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी''** कहकर महत् उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रेरित करती है। ऊर्मिला स्वयं भी राजप्रासाद के उपवन में रहकर अयोध्या की स्त्रियों और प्रजा के हितचिंतन के लिए व्यग्र है। वह जीवन के विशेष (उदात्त) विचार से साकेत में रहकर प्रिय के पथ में विघ्न नहीं डालती अपितु आदर्श की स्थापना करती है; तभी उसका तप-त्याग सभी के आकर्षण और अनुकरण का केन्द्र या आदर्श बनता है।

द्विवेदी युग नव जागरण प्रधान था। नारी कल्याण और उसके उत्थान के लिए सभी कृत संकल्प थे। ''साकेत'' में युग कवि गुप्त जी ने नारी की महानता की सर्वत्र स्थापना की है। रामकथा के लगभग सभी नारी पात्रों का व्यक्तित्व आकर्षक है। वे दलित, शोषित, उपेक्षित या निरादृत नहीं है। सती प्रथा का विरोध भी वशिष्ठ के स्वर में है। वे राजा दशरथ के स्वर्गवास होने पर उनकी रानियों को प्रिय स्मरण हेतु जीवित रहने का परामर्श देते हैं :–

सह मरण के धर्म से भी ज्येष्ठ,
आयु-भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ।[१]

गुप्त जी की नारी भावना भारतीय नारी का आदर्श है। वह संयुक्त परिवार की सुदृढ़ नींव हैं। उन पर ही सम्पूर्ण परिवार का भव्य प्रासाद खड़ा है। वे समष्टि के लिए व्यष्टि को न्योछावर करती हैं, साथ ही पतियों की उदात्त मंगलकारी भावना में सहयोग कर अर्द्धांगिनी होने का स्वतः प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

दिसम्बर सन् १८८५ ई० में काँग्रेस की स्थापना के साथ ही देश में स्वतंत्रता की भावना शनैः शनैः बलवती होती गयी। बाल गंगाधर तिलक, गोखले तथा काँग्रेस के अन्य नेता देश की आजादी के लिए संगठित और सक्रिय होने लगे। इन्हीं के मध्य गाँधी जी की अवतारणा ने आजादी के दीवानों में नया उत्साह भरा। कालान्तर में उन्हीं के नेतृत्व में आजादी के लिए सम्पूर्ण देश सक्रिय हो उठा, जिसका विशेष प्रभाव

(१) साकेत–७/२१०

इस युग के कवियों पर पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त गाँधी जी से विशेष प्रभावित थे। उनका देश-प्रेम गाँधीवादी विचारधारा पर आधारित था। यही कारण है कि उनके देश-प्रेम का अविरल प्रवाह सर्वत्र गतिमय होता दिखाई देता है। यथाः—

"धन्य भगवद् भूमि-भारतवर्ष है"[१]

साकेत के प्रथम सर्ग में देश की एकता और हिल-मिलकर रहने की भावना की ओर साकेतकार स्वयं स्पष्ट संकेत करता हैः—

एक तरु के विविध सुमनों से खिले।
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।[२]
एक राज्य न हो बहुत से हों जहाँ।
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।।[३]

इस प्रकार सम्पूर्ण साकेत में देश-प्रेम के जाने कितने ही भाव अपनी छटा बिखेरते हुए प्रायः दिखाई देते हैं।

द्विवेदी युग में पहली बार मनुष्य को मनुष्य के हित साधन के लिए व्यग्र दिखाया गया है। इस मानवतावादी विचारधारा ने एक लम्बे समय वंदिनी बनी मानवता को मुक्त करने का संकल्प लिया। फलतः उच्चवर्गीय चरित्रों और कथानकों में निम्न वर्ग के जीवन को भी स्थान मिला। शोषण और उत्पीड़न से त्रस्त भोलेभाले कृषकों और श्रमिकों को भी अब हिन्दी कविता का विषय बनने का अवसर आया। इस प्रकार दुख-दैन्य से पीड़ित मानवता को इस युग में विशेष संवेदनात्मक महत्त्व मिला। सामाजिक विपन्नता के स्थान पर समता, समानता और सामंजस्य को इस युग के काव्य में वरीयता मिली। दलित जनों के प्रति भी सहानुभूति दिखाई दी। युग–युग से नारी इसी वर्ग में आती रही है। अतः स्त्री-पुरुष के सम्बंधों की समानता का प्रबल स्वर साकेत के प्रथम सर्ग से ही गूँजता हुआ सुना जा सकता है। यथाः—

दास बनने का बहाना किसलिए ?
क्या मुझे दासी कहाना इसीलिए ?

(१) साकेत—१/१६ (२) साकेत—१/२२ (३) साकेत—१/२४

देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
और देवी मुझे रक्खो, अहो।
तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा।[1]

इस प्रकार नवयुग की चेतना से अनुप्राणित इस युग की भावना में समता और नारीत्व के प्रति उच्च भावना पहली बार देखने में आयी। गुप्त जी के नारी प्रधान काव्य उनकी उदार नारी-भावना के प्रमाण हैं। साकेत की मूल प्रेरणा ऊर्मिला जैसी नारी के उदात्त चरित्र को उद्घाटित करने के उद्देश्य का बोध कराती है। गुप्त जी की नारी प्रिय के कर्तव्य–पथ में बाधक न होकर साधक है:–

कहा ऊर्मिला ने .... हे मन !
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।[2]

भारतीय नारी तेजस्विता की पुंज रही है। प्रसंगवश ऊर्मिला की तेजस्विता से सम्बंधित निम्नांकित पंक्तियाँ उसकी उदात्तता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं :–

आ शत्रुघ्न-समीप रुकी लक्ष्मण की रानी,
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी।
जटा-जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे,
आनन पर सौ अरुण, घटा में फूट पड़े थे।[3]

द्विवेदी युग में नायिका भेद के परम्परागत रूप से भिन्न नवीन भेदों की कल्पना की गयी, जिसके अन्तर्गत देश प्रेमिका, जाति-प्रेमिका, जन्मभूमि-प्रेमिका तथा लोक सेविका इत्यादि नायिकाओं के नवीन रूपों की उद्भावना हुई। साकेत में इन नवीन नायिकाओं के विविध रूपों को सहज ही देखा जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में ऊर्मिला जैसी उपेक्षिता नारी का जहाँ उत्कर्ष चित्रित हुआ है, वहीं युग-युग की निन्दिता कैकेयी वन्दिता बनकर उपस्थित हुई है। इस प्रकार साकेत की ऊर्मिला भारतीय नारी

---

(१) साकेत–८/२२७ (२) साकेत–४/११० (३) साकेत–६/४७३

का आदर्श है जो अपने अनुराग और त्याग से सब पर प्रभाव की अमिट छाप छोड़ती है।

साकेत में छोटी और वन्य जातियों के प्रति प्रेम और सहानुभूति के साथ ही समता या समानता का आदर्श भी कवि ने सीता के माध्यम से प्रस्तुत किया है। चित्रकूट-प्रवास के अन्तर्गत सीता कोल-किरात-भिल्ल बालाओं के बीच जाकर जिस प्रकार उन्हें अपनाती एवं आश्वस्त करती हैं उससे द्विवेदी-युग की नयी सामाजिक चेतना का सहज प्रमाण मिलता हैः–

ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल–बालाओं
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ।
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।[१]

द्विवेदी युग में किसानों, मजदूरों और खलिहानों की ओर भी कवियों का ध्यान गया। इसीलिए भले ही इस युग के काव्य का कथानक पौराणिक या उच्चवर्गीय रहा हो, पर लोक जीवन से इस युग का कवि बराबर जुड़ा रहा है। साकेत की ऊर्मिला प्रिय-विरह-विदग्धा होकर भी किसानों और उनके खलिहानों का बराबर ध्यान रखती है। किसानों के प्रति उसके सराहना पूर्ण उद्गार ध्यातव्य हैं :–

हम राज्य लिए मरते हैं,
सच्चा राज्य किन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं,
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न,
पत्नी सहित विचरते हैं वे, भव-वैभव भरते है।[२]

द्विवेदी युग में सेवा को सर्वोपरि महत्व मिला। इस युग में राम और कृष्ण को मानव रूप में चित्रित किया गया। इस प्रकार उन्हें मानवता की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया गया। तभी साकेत में राम की अवतारणा लोकसेवा के लिए हुई है। वे अपने आचरण के द्वारा इस संसार को स्वर्ग

(१) साकेत–८/२२७ (२) साकेत–६/३०७

बनाने हेतु अवतरित हुए हैं :—

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।[१]

मैथिलीशरण गुप्त की कविता का उद्‌देश्य सर्वधर्म समभाव रहा है। इसी भावना ने उन्हें जन-जन का कवि बनाया, राष्ट्रकवि बनाया। धर्म के प्रति उनका यह उदार दृष्टिकोण युगानुकूल था। गुप्त जी सबके कल्याण के इच्छुक थे। उनके राम और गाँधी की भाँति उनकी कविता भी जन-जन के कल्याण हेतु निर्मित और समर्पित थी। इसी कारण उन्हें "युगकवि" कहा गया।

गुप्त जी निर्गुण और सगुण के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। वे सामंजस्यवादी थे। उन्होंने निर्गुण और सगुण में सामंजस्य स्थापित करना युग की वांछनीयता समझी और उसी रूप में उसे प्रस्तुत किया। ब्रह्म अवतार भी लोकरंजन और लोकमंगल के लिए लेता है; तभी गुप्त जी समय की माँग के अनुसार निर्गुण, निराकार ब्रह्म को सगुण रूप में प्रस्तुत करते हुए अपनी युगानुकूलता सिद्ध करते हैं :—

हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[२]

आचार्य द्विवेदी स्वभाव से गम्भीर और नैतिकता तथा मर्यादा-प्रधान व्यक्ति थे। अपने युग पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। इसीलिए इस काल का काव्य उपदेश प्रधान एवं रसहीन कहा जाने लगा। इतिवृत्त-प्रधान कविता के कारण स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, सादा जीवन एवं श्रम का महत्व जैसे विषयों पर इस काल के कवियों का विशेष ध्यान गया। इस युग में साहित्यिक क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी का तथा राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी का पूर्ण वर्चस्व था। अतः इन युगपुरुषों से साकेतकार कैसे दूर रह सकता था? वास्तविकता तो यह है कि इन दोनों विभूतियों ने

(१) साकेत–८/२३४–२३५ (२) साकेत–१/१८

मैथिलीशरण के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विशेष प्रभावित किया। इस सुधारवादी युग से साकेतकार का प्रभावित होना सर्वथा स्वाभाविक था। गाँधी जी का कहना था –''सादा जीवन उच्च विचार''। साकेत की सीता चित्रकूट में ऐसा ही जीवन जीती और दूसरों को भी इसी प्रकार जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं :–

मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया,
क्या सुन्दर लता-वितान तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा।
जल निर्मल, पवन पराग-सना है मेरा,
गढ़ चित्रकूट दृढ़-दिव्य बना है मेरा।।
औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।[१]

इस प्रकार द्विवेदी जी नव जागरण के उस युग में सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में सुधार के पक्षधर थे। यही कारण है कि उनके काल में हास्य–प्रधान रचनाओं का अभाव हो गया। हास्य-व्यंग्य की यत्किंचित् जो सामग्री मिलती है वह सामाजिक एवं राजनैतिक या पश्चिम के विरोध के रूप में है। साकेत में हास्य-व्यंग्य का यह रूप उसके प्रथम सर्ग में लक्ष्मण-ऊर्मिला के प्रेमपूर्ण हास-परिहास में दिखाई देता है। इस सर्ग में सुन्दर शिष्ट हास्य के साथ ही साथ पुरुष द्वारा नारी के अधिकार-शोषण के विरुद्ध निर्मम व्यंग्य की बौछार भी है :––

धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता,
मोहिनी सी मूर्ति मंजु मनोज्ञता।
धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ,
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ।
दास बनने का बहाना किसलिए ?
या मुझे दास कहाना, इसलिए ?[२]

आचार्य द्विवेदी के अथक प्रयास से गद्य और पद्य दोनों की भाषा खड़ीबोली हो सकी थी। भाषा-संस्कार पर द्विवेदी जी ने स्वयं तो विशेष

(१) साकेत–८/२२३ (२) साकेत–१/३०

ध्यान दिया ही था; साथ ही उन्होंने अपने सहयोगियों को भी इस दिशा में विशेष रूप से प्रेरित किया था। मैथिलीशरण द्विवेदी जी के परमप्रिय शिष्य थे। अतः कविता की भाव-सम्पदा में परिवर्तन के साथ ही साथ उन्होंने खड़ीबोली भाषा के परिष्कार और प्रयोग के प्रति भी मैथिलीशरण को प्रेरित किया था। यद्यपि खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' है, तथापि खड़ीबोली का जैसा परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप गुप्त जी के 'साकेत' में उपलब्ध होता है वैसा 'प्रियप्रवास' में नहीं। साकेतकार ने खड़ीबोली को गीतों के अनुरूप जो कोमल एवं संगीतमय रूप दिया है कालान्तर में वही खड़ीबोली काव्य भाषा का आदर्श बना है।

साकेत के नवम सर्ग में गीत के विविध रूपों की भरमार है। इनमें प्रयुक्त अधिकांश खड़ीबोली छायावाद के किसी भी कवि की भाषा से समता स्थापित करने में समर्थ है। निम्नलिखित गीत गुप्त जी की काव्यभाषा का आदर्श माना गया है :–

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि पतंग तो जलता ही है,
दीपक भी जलता है।[१]

द्विवेदी युग में विषय वस्तु की विविधता और अनेकरूपता के साथ ही साथ परम्परागत छन्द-भाण्डार में भी वृद्धि हुई। भक्ति एवं रीतिकाल के प्रचलित छन्दों को गुप्त जी ने साकेत में स्थान दिया। साकेत के नवम सर्ग में छन्दों की जो बहुलता एवं विविधता है उसका एक कारण कवि का तुलसी की भाँति छन्दाधिकार प्रदर्शित करना तो है ही साथ ही चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि के विभिन्न कालों को इस ब्याज से दरसाना भी है। साकेतकार ने अपने इस काव्य में आदि, भक्ति एवं रीतिकाल के छन्दों को अपनाने के साथ ही साथ लोक छन्दों को भी अपनाकर अपनी उदारता एवं दृष्टिकोण की व्यापकता का परिचय दिया है।

इसं काल में संस्कृत के छन्दों को अपनाने का निर्देश आचार्य द्विवेदी ने दिया था; जिसका अनुपालन हरिऔध तथा गुप्त जी सभी ने किया।

---

(१) साकेत–६/२८१

यही कारण है कि साकेत में मन्दाक्रान्ता, शिखरणी एवं शार्दूलविक्रीड़ित इत्यादि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

साकेत प्रबंधकाव्य है; फिर भी उसमें विविध काव्य-रूपों के दर्शन सहज ही किये जा सकते हैं। नवम सर्ग में कथानक कहाँ है, ये बात सामान्य पाठक के समझ से परे है। यह सम्पूर्ण सर्ग मुक्तक काव्यमय है, जहाँ विभिन्न कालों में ऊर्मिला की मनोदशा को समझाने के लिए कवि ने विविध प्रयोग किये हैं। इस सर्ग की एक विशेषता यह भी है कि इसमें गीत, प्रगीत एवं सम्बोधि गीतों का सुन्दर प्रयोग हुआ है, जिसे छायावाद के प्रतिनिधि काव्य 'कामायनी' में देखा जा सकता है।

द्विवेदी युग और साकेत से सम्बन्धित इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'साकेत' इस युग का प्रतिनिधि काव्य है। आचार्य द्विवेदी के निर्देशानुसार ढले एवं सँवरे मैथिलीशरण जी ने उनके प्रत्येक निर्देश को आदेश मानकर सहर्ष अपनाया है। द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन पद्य एवं गद्य की भाषागत एकरूपता है। आचार्य प्रवर ने सैकड़ों वर्षों से हिन्दी की एक मात्र काव्यभाषा बनी ब्रजभाषा के एक छत्र अधिकार को हटाकर युग सम्मत तथा युग प्रचलित ख़ड़ीबोली को सिंहासनारूढ़ कराया। उसका परिमार्जन एवं परिष्करण स्वयं तो किया ही, साथ ही उन्होंने अपने शिष्यों को इस ओर इंगित एवं प्रेरित किया; इन शिष्यों में गुप्त जी शीर्षस्थ थे। फलतः खड़ीबोली का परिमार्जन एवं परिष्करण जितना इस युग में गुप्त जी के काव्य में हुआ उतना अन्य किसी के काव्य में नहीं। साकेत की भाव-सम्पदा एवं शिल्प सौष्ठव सभी द्विवेदी युग की काव्य प्रवृत्तियों के अनुसार है।

साकेत का महाकाव्यत्व

आचार्यों ने काव्य के दो रूप माने हैं–मुक्तक और प्रबन्ध। मुक्तव काव्य का प्रत्येक छन्द अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसका आगे अथवा पीछे के छन्दों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि उसमें कथा का अभाव होता है। इसके विपरीत प्रबन्धकाव्य कथाबद्ध रचना है, जिसमें प्रयुक्त छन्दों में पूर्वापर सम्बन्ध होता है। इसीलिए आचार्यों ने प्रबन्धकाव्य के दो भेद और किये हैं–खण्डकाव्य तथा महाकाव्य।

महाकाव्य के वजन पर अंग्रेजी में 'एपिक' (EPIC) शब्द प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत के आचार्यों तथा अंग्रेजी के विद्वानों ने अपने–अपने यहाँ महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये थे, उनका आधार उनके यहाँ के ही प्रमुख ग्रन्थ रहे हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण आचार्यों ने रामायणम्, महाभारतम्, रघुवंशम्, किरातार्जुनीयम्, विक्रमांकदेवचरितम्, बुद्धचरितम् एवं शिशुपालवधम् जैसे ग्रन्थों के आधार पर किया था। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य में 'एपिक' के लक्षणों का निर्धारण ऑडेसी, इलियड, एवीड, डिवाइन कमेडी तथा पैराडाइज लास्ट प्रभृति प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर किया गया। पश्चिमी साहित्य में यह प्रवृत्ति स्वागत के योग्य है कि समय के साथ–साथ पश्चिम के विचारक अपने 'साहित्यशास्त्र' में अपेक्षित संशोधन, परिवर्धन एवं नियम परिवर्तन करते रहते हैं; पर भारतीय 'साहित्यशास्त्र' में ऐसा कुछ नहीं है।

हिन्दी का अपना कोई काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र नहीं है। वह इसके लिए संस्कृत काव्यशास्त्र का मुखापेक्षी है। संस्कृत का स्वर्णकाल अब नहीं रहा। अतः महाकाव्योचित उदात्तता वाले ग्रन्थों का उसमें अभाव है। इसीलिए संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य के लक्षणों में परिवर्तन की

कोई आवश्यकता नहीं अनुभव की जाती। यह युग हिन्दी का है। पृथ्वीराजरासो (चन्दवरदायी) से लेकर उर्वशी (दिनकर) तक महाकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा हिन्दी में है, जिसका सम्यक् आकलन संस्कृत के काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथों में निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए वरन् हिन्दी का अपना 'साहित्यशास्त्र' होना चाहिए; तभी उसके महाकाव्यों का उसकी कसौटी पर समुचित मूल्यांकन सम्भव होगा।

मैथिलीशरण जी के व्यक्तित्व में परम्परा और प्रयोग का अद्भुत सामंजस्य था। वे स्वस्थ परम्परा के पालक होकर भी युगधर्म को लेकर चलने वाले रचनाकार थे। इसीलिए उनके सभी प्रकार के विचारों में प्रगतिशीलता थी। महाकाव्य के सम्बन्ध में भी उनकी स्पष्ट धारणा थी–

"महाकाव्य के कितने ही विषय कवि पर इस प्रकार का दबाव डालते हैं। जिस कथा में उनकी आवश्यकता न हो उसमें भी उन्हें लाने से अप्रासंगिकता का डर है। पर उनके बिना महाकाव्यत्व नहीं रहता। वन-विहार-वर्णन, जलकेलि-वर्णन, आखेट–वर्णन, षड्ऋतु–वर्णन, गिरि–वर्णन और समुद्र आदि के वर्णन सभी महाकाव्यों के लिए आवश्यक समझे गये हैं, परन्तु इस विषय में हमें परतंत्र होना उचित नहीं। समय और कथानक के अनुकूल बातों का ही वर्णन करना उचित है। इन बातों के बिना महाकाव्यत्व नष्ट नहीं हो सकता। मेरी राय में किसी एक विषय पर भी कविता लिखकर महाकवि होने का परिचय दिया जा सकता है और इस क्षेत्र में कविता-मर्मज्ञों से स्वीकार भी कराया लिया जा सकता है। प्राचीनों के मत से मेघदूत खण्डकाव्य है, पर उसे महाकाव्य मानने में कोई बाधा का कारण नहीं। लोग उसे महाकाव्य मानते भी हैं। फिर हम लोग उसके लिए कुछ विशेष बातों की प्रतिबद्धता क्यों स्वीकार करें? जो बातें किसी विशेष कथानक से सम्बन्ध रखती हैं वे उसी के साथ अच्छी मालूम होती हैं। तो क्या हमें महाकाव्य लिखते समय हर दफे उन्हीं के अनुकूल कथानक खोजना होगा? यह तो उलटी बात है। कथानक के अनुकूल विषय–योजना होनी चाहिए। महाकाव्य के कितने ही विषय समयानुकूल भी नहीं। ऐसी दशा में उनके बिना महाकाव्यत्व नष्ट नहीं हो सकता।"१

---

(१) राष्ट्रकवि मै०श० गुप्त अभि०ग्रन्थ–डॉ० अग्रवाल, २८५–८६

मैथिलीशरण गुप्त के उपर्युक्त विचार कितने क्रान्तिकारी हैं इसे सहज ही समझा जा सकता है। ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि साकेत के महाकाव्यत्व का आकलन पुरानी परिपाटी के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, अपितु हिन्दी का अपना साहित्यशास्त्र होना चाहिए और विद्वानों को पक्षपात या पूर्वाग्रह रहित होकर भाषा के प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण करना चाहिए, तभी सही अर्थों में साकेत का समुचित मूल्यांकन सम्भव होगा।

परम्परागत लक्षणों को मानने वाले लोग प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी को महाकाव्य के लक्षणों पर सही नहीं पाते। यदि उनकी इस कसौटी को स्वीकार कर देखा जाए तो शायद ही कोई ग्रन्थ महाकाव्य की श्रेणी में आयेगा। गोस्वामी तुलसीदास ने परम्परा का अक्षरशः पालन नहीं किया; तभी उनके मानस में आठ के स्थान पर सात ही काण्ड हैं।

मैथिलीशरण गुप्त संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण और उसके काव्यशास्त्र के अच्छे मर्मज्ञ थे; फिर भी वे निर्बन्ध रहकर समय के साथ चलने वाले व्यक्ति थे। इसीलिए उनका कृतित्व युग-बोध और युग-दृष्टि से अनुप्राणित है। 'साकेत' में भी उन्होंने महाकाव्य के परम्परागत अधिकांश लक्षणों का सम्यक् निर्वाह करते हुए भी अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। इसीलिए इनके इस ग्रन्थ का ऑकलन महाकाव्य की प्राचीन परिपाटी के आधार पर पूर्णतः करना न्यायोचित नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि महाकाव्य के परम्परागत नियमों को संशोधित करके उन्हें युग धर्म के अनुसार स्वीकार करना ही समीचीन होगा।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में महाकाव्य के लक्षणों पर विचार करते समय काव्यशास्त्रियों ने ग्रेट (GREAT) मैग्नीफ़िसेंट (MAGNIFICENT) डिग्नीफाइड (DIGNIFIED) तथा सबलाइम (SUBLIME) इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। ये सारे शब्द महाकाव्य के अन्तः सौन्दर्य की प्रशंसा में व्यक्त किये गये, जिनसे स्पष्ट है कि महाकाव्य का सृजन व्यक्ति के लिए, भाषा के लिए तथा राष्ट्र के लिए विशेष गौरव का विषय होता है। इसीलिए साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य की श्रेष्ठता के लिए कुछ आवश्यक नियम बनाएं हैं, जो पूर्वाग्रह रहित हैं। हिन्दी का जब तक पूर्वाग्रह रहित अपना साहित्यशास्त्र नहीं बनता तब तक निम्नांकित नियमों के आधार पर ही किसी महाकाव्य का आकलन करना उचित होगा :–

(१) महाकाव्य में व्यापक जीवन का सुसम्बद्ध चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
(२) महाकाव्य का लक्ष्य महान होना चाहिए।
(३) महाकाव्य की पात्र–योजना उदात्त और विशिष्ट होनी चाहिए।
(४) महाकाव्य का जीवन-दर्शन मौलिक, गम्भीर तथा लोकहितकारी होना चाहिए।
(५) महाकाव्य का वर्णन मार्मिक होना चाहिए।
(६) उसकी काव्य–भाषा भव्य या उदात्त होनी चाहिए।

इन्हीं उपर्युक्त नियमों के परिप्रेक्ष्य में साकेत के महाकाव्यत्व का पुनरावलोकन अपेक्षित प्रतीत होता है।

'साकेत' के कथानक की कालावधि भले ही चौदह वर्षीय हो पर वह समग्र भारतीय जीवन को अपने में समेटे है। बारह सर्गों वाले इस प्रबन्धकाव्य में राम–लक्ष्मण के बाल्यकाल से लेकर उनकी लंका–विजय के उपरान्त पुनः अयोध्या आने तक के अन्तराल के अर्न्तगत ही जीवन की सारी जटिलताएं, विसंगतियाँ और चुनौतियाँ, दुःख-सुख तथा जीवन-मरण इत्यादि सभी कुछ आ गया है। यह कथानक भारतीय जन-जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साकेत सभी को दिशा एवं प्रेरणा देता है। साकेत के कथानक में तत्कालीन भारतीय सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक दृष्टि और साहित्यिक रचनाधर्मिता का समन्वित रूप विद्यमान है। यही कारण है कि साकेत की प्रासंगिकता सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। साकेत का कथानक जन–जीवन के विराट फलक पर आधारित है। आलोच्य महाकाव्य में जीवन के असंख्य सुस्पष्ट, सुसम्बद्ध एवं सुगठित चित्र विद्यमान हैं।

ग्रंथ की सफलता और अवरोधरहित समाप्ति के लिए गुप्त जी ने परम्परागत महाकाव्यों की भाँति 'साकेत' के प्रारम्भ में मंगलाचरण का भी ध्यान रखा है। उन्होंने गणेश तथा सरस्वती की वंदना इसी उद्देश्य से की है। सरस्वती-वंदना में काव्य की देवी से कवि द्वारा की गयी कामना अथवा याचना 'साकेत' की मौलिकता को दृष्टि में रखकर है।

महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है। उसका प्रत्येक सर्ग एक दूसरे से जुड़ा होता है। उसका पूर्वापर (पहले और बाद) सम्बन्ध होता है। इस दृष्टि से साकेत सर्गबद्ध काव्य है। इसमें बारह सर्ग हैं; पर उनमें

पूर्वापर सम्बन्ध का सम्यक् निर्वाह नहीं हो सका है। काव्य का आरम्भ अयोध्या के माहात्म्य और ऊर्मिला-लक्ष्मण के प्रेमपूर्ण संलाप से युक्त है। काव्य के नवम सर्ग तक इसकी कथागत क्रमबद्धता अक्षुण्ण है।

दशम सर्ग राम, लक्ष्मण, सीता और ऊर्मिला इत्यादि के बाल्यकाल से सम्बन्धित है जिसे क्रमबद्धता के विचार से उचित नहीं कहा जा सकता। 'मानस' के अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड और सुन्दरकांड की कथा को 'साकेत' के ग्यारहवें सर्ग में प्रस्तुत किया गया है। 'साकेत' का बारहवाँ और अंतिम सर्ग लंका में युद्ध, राम के अयोध्या में पुनरागमन एवं ऊर्मिला-लक्ष्मण मिलन पर आधारित है। पहले से लेकर नवम सर्ग तक कथा का जो विकास है, वह क्रमिक है, विस्तृत है और मन्थर भी; पर अंतिम तीन सर्गों में कथा के सहज विकास को जैसे कुचल दिया गया है। इसीलिए इनकी नैसर्गिकता निश्चित रूप से बाधित हुई है। यह दोष सफल महाकाव्य के लिए उचित नहीं है। गुप्त जी द्वारा प्रख्यात रामकथा को तोड़-मरोड़ कर मनोनुकूल प्रस्तुत करना निर्विवाद रूप से अनपेक्षित है।

महाकाव्य में वस्तु-व्यापार तथा परिस्थिति का सम्यक् निर्वाह होना चाहिए। 'साकेत' में वर्णित रामकथा में जीवन के लगभग सभी पक्षों के सुख-दुःखमय स्वरूप चित्रित हुए हैं। प्रेम, विवाह, मिलन–बिछुड़न, गोष्ठी, सैनिक अभियान एवं युद्ध इत्यादि का वर्णन है। प्रकृति–वर्णन का भी 'साकेत' में सम्यक् रूप दिखायी देता है। विभिन्न ऋतुओं का पात्रों पर पड़ने वाला प्रभाव भी चित्रित है।

भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में लगभग सभी रसों का निर्वाह होना चाहिए; पर उसमें किसी एक रस की प्रधानता अपेक्षित है। 'साकेत' के आरंभिक और अंतिम सर्ग संयोग शृंगार के उदाहरण हैं फिर भी दोनों के मिलन में अन्तर है। प्रथम सर्ग में जहाँ शृंगार है वहीं अंतिम सर्ग में वह सात्विक शृंगार बन गया है। भरत और मांडवी कहने को साथ-साथ हैं; पर उनमें भी शृंगार की कोई छुअन नहीं। 'साकेत' के नवम और दशम सर्गो में करुण रस की प्रधानता है। नवम सर्ग का करुण रस किसी में करुणा या संवेदना जागृत कर सका है, ऐसा नहीं लगता। पाठक की मनः स्थिति ऊर्मिला की मनः स्थिति से तादात्म्य नहीं स्थापित कर पाती। द्वादश सर्ग में वीर रस की प्रधानता है, अन्य रस समय और प्रसंग के अनुसार अपने सहज रूप में आये हैं। 'साकेत' की रस-योजना ने पात्रों

की मानसिक स्थिति का वर्णन किया है। भाव–व्यंजना जो कवि के रूप में होनी चाहिए वह नवम सर्ग में सर्वाधिक रूप में है।

आचार्यों ने 'चतुर्वर्ग' फल–प्राप्ति के अन्तर्गत किसी एक की प्राप्ति या सिद्धि को महाकाव्य का प्रयोजन माना है। साकेत को यदि इस कसौटी के आधार पर कसा जाय तो महाकवि को 'धर्मफल' ही अभीष्ट है। इस प्रकार कवि का लक्ष्य महत् है, वह नर को ईश्वरता प्राप्त कराने तथा इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिए कृत संकल्प है।

महाकाव्य नायक के वृहत्तर जीवन को लेकर रचा जाता है। इसे उसका लगभग सम्पूर्ण जीवन माना जाता है। अभिप्राय यह है कि उसके जीवन के विस्तार की कोई सीमा नहीं होती, फिर भी कवि महच्चरित्र के जितने जीवन को लेता है, वह विराट अवश्य होता है। साकेत लोक प्रख्यात रामकथा पर आधारित काव्य है। कवि ने किसी न किसी प्रकार से लगभग सम्पूर्ण रामकथा को आलोच्य काव्य में समाहित किया है। कुछ आलोचकों की धारणा है कि इसमें तो राम के वृहत्तर जीवन के मात्र चौदह वर्ष ही स्थान पाये हैं। इस दृष्टि से 'साकेत' महाकाव्य नहीं है; जबकि बात ऐसी नहीं। कृतिकार ने राम के उदात्त जीवन के लगभग सभी पक्षों, प्रसंगों, अवस्थाओं तथा घटनाओं का 'साकेत' में समावेश किया है। अतः इसके कथानक को मात्र चौदह वर्ष तक सीमित मानना सर्वथा असंगत है।

'साकेत' मात्र भारत की कल्याण–भावना पर आधारित काव्य नहीं; अपितु वह विश्व-बंधुत्व याकि वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से अनुप्राणित है। 'साकेत' की पात्र-योजना में गुप्त जी बराबर सावधान रहे हैं। उनके लगभग सभी प्रमुख पात्र व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को महत्व देते हैं। यही पात्रों के व्यक्तित्व की उदात्तता या विराटता है। चरितनायक राम का समग्र जीवन तो लोकहिताय है ही, सीता भी पति की इच्छानुसार वन्य-जीवन को सहर्ष स्वीकार करती हैं।[१]

विवेच्य काव्य में हनुमान, भरत तथा सभी नारी पात्र लोक के लिए समर्पित और चिंतित चित्रित हुए हैं। 'साकेत' के जीवन-दर्शन में मौलिकता

(१) दे०–साकेत–८/२२२–२२८

है। उस पर गाँधीवादी कर्म और दर्शन का व्यापक एवं गम्भीर प्रभाव है। इसीलिए साकेत की सम्पूर्ण कथावस्तु, पात्र-परिकल्पना और उद्देश्य सभी लोकमंगलकारी भावना से ओतप्रोत हैं। यथा :–

सुख क्या है बढ़कर दुःख सहन करना ही।
गौरव क्या है जन-भार वहन करना ही।[१]

इस प्रकार साकेत प्रबंधकाव्य का उद्देश्य भी संकुचित न होकर व्यापक है, महान है। विवेच्य काव्य का प्रतिपाद्य मानवता के प्रति आस्था व्यक्त करना है। इस महाकाव्य द्वारा गुप्त जी आर्य–संस्कृति की स्थापना करने में सफल हुए हैं; उनका उद्घोष इसकी स्वतः पुष्टि करता है:–

आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित
आर्य–धर्म आश्वस्त हुआ।[२]

साकेत के माध्यम से नारी के प्रति संवेदना व्यक्त करना और उसका उत्कर्ष चाहना भी गुप्त जी का लक्ष्य रहा। ऊर्मिला,कैकेई, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति के चरित्रों की गणना इसी क्रम में की जानी चाहिए। साकेत के चरितनायक राम और सीता गाँधी जी के जीवन–दर्शन से प्रभावित हैं। उनमें सेवा–भावना का प्राबल्य है।[३]

गुप्त जी राष्ट्रकवि थे। उन्होंने साकेत द्वारा परतंत्र भारतवासियों को झकझोरा और स्वराज्य के लिए उन्हें अधीर बनाया है। इस प्रकार साकेत अपने युग–धर्म से तो जुड़ा ही है; साथ ही वह वर्तमान के लिए भी संदेश देता है:–

असुर-शासन शिशिरमय हेमंत है,
पर निकट ही राम–राज्य वसंत है।[४]

- -

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल वन में।[५]

साकेत की काव्य–भाषा में शरद्कालीन सरिता जैसी निर्मलता, शीतलता एवं प्रवाहमयता है। गुप्त जी ने साकेत में ब्रजभाषा के स्थान

(१) साकेत–८/२२८ (२) साकेत–११/४१५ (३) दे०–साकत–८/२३४
(४) साकेत–१/१८ (५) साकेत–१२/४५४

पर खड़ीबोली का जैसा साधिकार प्रयोग किया, उसके फलस्वरूप पद्य और गद्य की भाषा की भिन्नता का विवाद स्वतः समाप्त हो गया। ब्रजभाषा ने खड़ीबोली का नेतृत्व स्वीकार किया। फलतः गुप्त जी ने'साकेत' के आठवें सर्ग में खडीबोली को समर्थ भाषा सिद्ध करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

विरह-वर्णन प्रधान नवम सर्ग में साकेतकार द्वारा अपनायी गयी गीति-योजना से 'प्रसाद' जैसे छायावादी कवियों को प्रांजल काव्यभाषा आदर्श–रूप में प्राप्त हुई। इसके अलावा गीति जो मुक्तक काव्य के अन्तर्गत माना जाता था, साकेत में उसके सफल प्रयोग से अन्य रचनाधर्मियों को प्रेरणा और शक्ति प्राप्त हुई।

'साकेत' के महाकाव्यत्व से सम्बन्धित इस विवेचन से स्पष्ट है कि यह काव्य आधुनिक काल के श्रेष्ठ महाकाव्यों में से नहीं; अपितु हिन्दी के प्रमुख महाकाव्यों में से एक है। रामकथा-प्रधान हिंदी के सभी महाकाव्यों में तुलसी के 'मानस' के उपरान्त इसी का नाम लिया जाता है। साकेत के महाकाव्यत्व के मूल्यांकन हेतु यह पुनः कहना उचित होगा कि हिंदी का अपना 'साहित्यशास्त्र' होना चाहिए, इसकी त्वरित आवश्यकता है। इसके अभाव में संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर प्रियप्रवास, 'साकेत', 'कामायनी' तथा उर्वशी इत्यादि काव्यों का मूल्यांकन नितांत असंगत है।

राम काव्य-परम्परा और साकेत

राम काव्य–परम्परा में 'साकेत' का महत्वपूर्ण स्थान है। रामकथा का प्रबन्धात्मक रूप सर्वप्रथम वाल्मीकि कृत 'रामायण' में उपलब्ध होता है। राम के समकालीन होने के कारण कवि ने उनके चरित्र का प्रायः यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है। इसीलिए वाल्मीकि के नायक प्रमुखतः 'पुरूषोत्तम' या 'नरोत्तम' के रूप में चित्रित हुए हैं। यद्यपि महाकवि ने राम में जिन असाधारण और अलौकिक गुणों को दर्शाया है, उनके आधार पर उन्हें ईश्वर के समकक्ष या उन्हीं का जैसा प्रतिपादित किया है। आदिकवि के अनन्तर संस्कृत भाषा के अनेक काव्यों में उन्हें ईश्वर-रूप में प्रस्तुत किया गया–इनमें 'अध्यात्म रामायण' का नाम सर्वोपरि है। इस ग्रंथ से प्रभावित होकर ही तुलसी ने अपने रामचरित मानस में राम की व्यापक, अजित, अनादि और अनन्त (ब्रह्म) रूप में स्थापना की थी। इस प्रकार 'रामायण' और रामचरितमानस के रचयिताओं की मानसिकता के अन्तर को यदि स्पष्ट करना हो तो यह कहना असंगत न होगा कि वाल्मीकि में राम के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी, इसके विपरीत तुलसी में अगाध भक्ति। दोनों की मनः स्थिति का यही भेद उनके ग्रंथों में सर्वत्र परिलक्षित होता है। रामायणकार राम के समकालीन थे इसीलिए उसके काव्य का पृथक ऐतिहासिक महत्व है। तुलसी अनन्य राम–भक्त थे। अतः मानस की सर्वथा स्वतंत्र सत्ता है।

आधुनिक काल में राम काव्य में उपर्युक्त दोनों आदर्श पूर्णतः युग–सापेक्ष या प्रासंगिक न थे। इसीलिए रामकथा को युगानुरूप ढालने की अत्यंत आवश्यकता थी। इस दिशा में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' निबंध से प्रेरणा लेकर 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' निबन्ध 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित किया। इस प्रकार रामकथा में आधुनिक सन्दर्भो से अनुप्राणित करने

का नया आयाम देने में आचार्य द्विवेदी ने दिशा–निर्देशक या इतिहास पुरुष की भूमिका निभायी।

अपने काव्य–गुरू आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर मैथिलीशरण गुप्त ने परम्परागत रामकथा एवं चरित्रों को युगीन सन्दर्भ में प्रस्तुत कर अपनी राष्ट्रीय भावना और प्रगतिशीलता का परिचय दिया। अनेक मौलिक उद्भावनाओं के कारण ही राम काव्य परम्परा में 'साकेत' की अलग और विशिष्ट पहचान बनी। उन्हीं का क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है।

(१) ऊर्मिला विषयक उदासीनता का निराकरण – साकेतकार ने महाकाव्य के प्रथमसर्ग में ऊर्मिला और लक्ष्मण के सुखमय तथा विलासमय दाम्पत्य जीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हुए युवा नव दम्पत्ति के हृदयस्थ भावों और चेष्टाओं का सूक्ष्मांकन कर रामकाव्य में अपनी मौलिकता का तो परिचय दिया ही है, इसके अतिरिक्त उसने अपने परिवार में परम्परा से चली आती रसिकोपासना का भी सम्यक् निर्वाह किया है। इसके अनन्तर आठवें सर्ग के अंतर्गत चित्रकूट में अयोध्या के लिए प्रस्थान करने से पूर्व ऊर्मिला की लक्ष्मण से युक्तिपूर्ण भेंट करा कर कवि ने व्यावहारिकता का निर्वाह किया है। इसके अतिरिक्त युगल दम्पत्ति के प्रेम की गहनता-प्रगाढ़ता चित्रित कर मौलिकता का उत्कृष्ट प्रमाण भी दिया है। प्रायः आरम्भ में या प्रतिकूल परिस्थितियों में पति-पत्नी को मिलाने का कार्य भाभियाँ करती रही हैं। कवि ने इस प्रकार पर्णकुटी में वियोगी दम्पत्ति की भेंट चित्रित कर लोक परम्परा का पालन करते हुए 'लोक' के प्रति अपना विश्वास व्यक्त किया है।

भ्रातृ–प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करने के विचार से लक्ष्मण अपनी नवागंत पत्नी को राजभवन में ही छोड़ अग्रज राम का अनुसरण करते हैं। सुखमय दाम्पत्य जीवन में आए इस अवरोध या गतिरोध का ऊर्मिला के मन पर क्या प्रभाव पड़ा, इस विषय में गुप्त जी के पूर्व का राम काव्य पूर्णतः मौन है। पूर्ववर्ती राम काव्यकारों द्वारा ऊर्मिला जैसी पति परायणा, सती–साध्वी, त्यागमयी, अनुरागमयी उदात्त नारी चरित्र की उपेक्षा वस्तुतः उसके प्रति अन्याय था। गुप्त जी ने इस उपेक्षिता को साकेत की नायिका रूप में प्रस्तुत कर ऊर्मिला के महिमा और गरिमा–मण्डित व्यक्तित्व से सभी को अवगत कराया तथा अपनी औचित्यपूर्ण मौलिकता का परिचय दिया।

कवि गुप्त की ऊर्मिला उसकी मौलिक सृष्टि है। उसने लक्ष्मण एवं ऊर्मिला के महत्व की पुष्टि अपने आराध्य से कराकर उन्हें जिस उदात्त भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है, उनकी समता कर सकने की क्षमता विरले ही चरित्रों में होगी–

लक्ष्मण! तुम हो तपस्पृही मैं बन में भी रहा गृही
वनवासी हे लक्ष्मण ! हुए वस्तुतः तुम दो ही।
~~ ~~ ~~
तूने तो सहधर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्मस्थापन किया भाग्यशालिनि इस भू पर।[1]

ऊर्मिला को अयोध्या में ही रहने के लिए किसी ने बाध्य नहीं किया था; बल्कि कर्तव्य की बेड़ियाँ उसने स्वयं पहनीं थी तभी वह कहती है–

उर्मि हूँ मैं हा भावार्णव की नयी
अटक जीवन के विशेष विचार से [२]
~~ ~~ ~~
मैं पिंजड़े में पड़ी हुई हूँ किन्तु खुला है द्वार भी......।[३]

इसी प्रकार साकेत के अंत में कवि ने लक्ष्मण–ऊर्मिला का चौदह वर्षो के उपरान्त मिलन चित्रित कर दोनों के दाम्पत्य प्रेम की मनोरम तथा अनुपम झाँकी प्रस्तुत की। रामकथा के अछूते; किंतु महत्वपूर्ण मार्मिक प्रसंगों तथा चरित्र को समक्ष लाकर गुप्त जी ने अपनी मौलिक सूझ–बूझ का तो परिचय दिया है साथ ही अपने महाकाव्य को 'अति विशिष्ट' भी बनाया।

२. विरह–वर्णन में भिन्नता– परम्परागत विरह–वर्णन की भाँति नायिका का अत्यधिक विरह में भस्म होना, रात–रात करवटें बदलना तथा उसकी उक्तियों में भी ऊहात्मकता लाना गुप्त जी को अभिप्रेत न था। उन्होंने ऊर्मिला जैसी उदात्त नारी की सृष्टि मनुष्यता की उच्च भाव–भूमि पर की है। वह विभिन्न कालों, ऋतुओं और पर्वो पर हाय तोबा नहीं मचाती, किसी को कोसती नहीं, अपितु विरह वेदना को अपने लिए भली मानती है। उसका आभार स्वीकार करती है–

---

(१) साकेत–१२/४६५ (२) साकेत–६/३२५ (३) साकेत–६/२८०

(१) वेदने ! तू भी भली बनी।.........
पायी मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी[1]

(२) विरह संग अभिसार भी
भार जहाँ आभार भी।[2]

साकेत की विरहिणी अन्य नायिकाओं की भाँति कोयल, चातक तथा चन्द्रमा इत्यादि को कोसती नहीं; अपितु उनका आह्वान करती है, उनसे निरन्तर बोलते रहने का आग्रह करती है[3]। यही नहीं वह नगर की अन्य प्रोषितपतिकाओं को अपने यहाँ आमंत्रित करती है[4] तथा राज्य की समृद्धता आदि का हाल–चाल भी पूछती है –

पूछी थी सुकाल-दशा मैंने आ देवर से–
कैसी हुई उपज कपास, ईख, धान की?[3]

इस प्रकार विरह काल ने उसके दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की है। उसे जीवन और जगत की वास्तविकता से अवगत कराया है –

जहाँ विरह ने गार दिया है किया वहीं उपकार भी,
सुध–बुध हर ली, किंतु दिया है काल–ज्ञान विचार भी।
जना दिया है उसने मुझको जन–जीवन है भार भी।....
प्रिय ही नहीं, यहाँ मैं भी हूँ साथ एक संसार भी।[4]

तभी तो ऊर्मिला को अर्थ (धन) और पृथ्वी की किंचित् भी लालसा नहीं है। वह उन्हें कलहपूर्ण मानती है तथा ग्रामीणों के सुख–शांति तथा सौहार्द्रपूर्ण जीवन की सराहना करती है।

३. कैकेयी की वंदिता रूप में स्थापना– कैकेयी ने अपने पुत्र भरत के लिए राज्य का वर माँगा और वह निष्कंटक राज्य कर सके इसके लिए राम चौदह वर्ष के लिए वन जायें–यह दूसरा वर भी उसने राजा दशरथ से माँगा। उसके इस कृत्य के लिए सभी ने उसकी निंदा की, भर्त्सना की। किसी ने 'गई गिरा मति फेरि' कह कर उसके दोष को कम करना चाहा; किंतु फिर भी कवियों का कैकेयी के प्रति मन का क्षोभ कभी भी गया नहीं। इसके विपरीत साकेतकार ने कैकेयी के चरित्र को

---

(१) साकेत–६२८० (२) वही–२८० (३) साकेत–६/३०६ (४) साकेत–६/२८०–२८१

मनोवैज्ञानिक भाव–भूमि पर प्रस्तुत कर तथा आत्म–ग्लानि की अग्नि में तपाकर उसके चरित्र को कुंदन के समान निखारा एवं महत्वपूर्ण बनाया है। कैकेयी की अतिशय उदार मातृ–भावना एवं वात्सल्य पर किए गए अविश्वास और छल के प्रतिक्रिया स्वरूप वह स्वाभिमान एवं दर्प से भर जाती है तभी वह विरोध करने का संकल्प लेती है। कैकेयी राम और भरत में कोई अंतर नहीं मानती, किन्तु राम के राज्याभिषेक जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण अवसर पर भी भरत को ननिहाल से बुलाया नहीं जाता तो उसका नारी-सुलभ मातृ-हृदय विद्रोह का संकल्प करता है। कैकेयी का यह आचरण स्वाभाविक है, मनोवैज्ञानिक है :–

किन्तु चाहे जो कुछ हो जाये, सहूँगी कभी न यह अन्याय।
भरत से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उसे जो गेह।
करूँगी मैं इसका प्रतिकार, पलट जाये चाहे संसार।[१]

कैकेयी ने यह ताण्डव अपने पुत्र भरत के लिए किया था; किन्तु उसने ही माँ से मुँह फेर लिया तो फिर उसके लिए संताप के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता। कैकेयी जो 'भला दोनों में क्या है भेद, राम की माँ कल या आज कहेगा मुझे न लोक समाज' जैसे उदार विचारों से अनुप्राणित थी। पुत्र के विमुख होने पर भरत से ही कहीं अधिक राम को मानने लगती है। पुत्र के साथ वह भी राम को मनाने चित्रकूट जाती है और भरी सभा में अपने को कुल कलंकिनी रूप में स्वीकार करती हुई राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह करती हैं ––

यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात तुम्हारी मैया।
यदि मैं उकसायी गयी भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।
युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।''[२]

(१) साकेत–२/५२ (२) साकेत–८/२१८

कैकेयी के ऐसे भावातिरेक में डूबे उद्‌गारों को सुनकर राम के साथ ही साथ चित्रकूट में विचारार्थ एकत्रित सम्पूर्ण सभा ही पुकार उठती है–

पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई,
"सौ बार धन्य वह, एक लाल की माई।"[१]

इसी प्रकार लंका में लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का समाचार पाकर कैकेयी भरत के साथ–साथ स्वयं भी लंका जाकर शत्रुओं से संघर्ष में सहयोग देने के लिए तत्पर हैः–

"भरत जाएगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी?
"मैं निज पति के संग गयी थी असुर–समर में,
जाऊँगी अब पुत्र–संग भी अरि समर में।"[२]

इस प्रकार भावुकता के किन्हीं क्षणों में जो त्रुटि कैकेयी से हुई थी उसके लिए वह भरपूर पश्चाताप एवं प्रायश्चित करती है। साकेतकार ने कैकेयी के चरित्र को जो नव्य एवं भव्य रूप दिया उसके फलस्वरूप वह निन्दिता से वंदिता बन गयी और कितने ही कवियों ने उसके महिमा-मण्डित चरित्र पर अनेक काव्यों की सृष्टि की है।

४. आदर्श कौटुम्बिक जीवन का चित्रण– कवि गुप्त जीवन–पर्यन्त भारतीय संस्कृति के पोषक और गायक रहे; तभी वे संयुक्त परिवार प्रथा के पक्षधर थे। उनका संयुक्त परिवार इसका ज्वलंत उदाहरण था; जिसमें भेद–भाव के स्थान पर स्नेह और सौहार्द्र का प्राबल्य था। साकेत के पूर्ववर्ती राम काव्यों में दशरथ उनकी पत्नियों तथा राम–सीता एवं अन्य भाइयों का मात्र उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत गुप्त जी ने राम–सीता के साथ–साथ भरत–माण्डवी, लक्ष्मण–ऊर्मिला एवं शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति के सौहार्द्रमय आदर्श दाम्पत्य जीवन के साथ–साथ सासुओं से उनके आत्मिक लगाव का चित्रण कर रामकथा को पूर्णता तो दी ही साथ ही संयुक्त परिवार के स्वस्थ स्वरूप का आदर्श रखकर छिन्न–भिन्न होती संयुक्त परिवार प्रथा एवं मानवता के प्रचार–प्रसार का श्लाघ्नीय कार्य किया। साकेत में राम सर्वत्र परिवार के प्रमुख स्नेही सदस्य के रूप में

---

(१) साकेत–८/२५० (२) साकेत–१२/४५८

चित्रित हुए हैं; उन्हें सदैव अपनी माताओं भाइयों, परिजन, पुरजन एवं भ्रातृजनों का ध्यान बना रहता है। यही नहीं चित्रकूट में राम–सीता एवं अयोध्या में भरत–माण्डवी की 'रहनि' अनिर्वचनीय आत्मिक सुख की अनुभूति कराती है। चारों ही भाइयों और उनकी पत्नियों के आदर्श पूर्ण सम्बंधों को रेखांकित करने वाली साकेत की निम्नांकित पंक्तियाँ ध्यातव्य है:–

राम–सीता, धन्य धीराम्बर इला; शौर्य–सह संपत्ति, लक्ष्मण–ऊर्मिला।
भरत कर्ता माण्डवी उनकी क्रिया; कीर्ति सी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न प्रिया।
ब्रह्म की हैं चार जैसे पूर्तियाँ, ठीक वैसी चार माया–मूर्तियाँ।[१]

५. रामकथा की युगीन संदर्भो में प्रस्तुति :– सहस्रों वर्ष पुरानी रामकथा, उसके पात्रों और प्रसंगों को गुप्त जी ने अपने समय की परिस्थितियों के अनुरूप प्रस्तुत कर उन्हें जो प्रासंगिकता एवं राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया वह सब विधि सराहनीय है। साकेतकार ने राम और रावण के द्वन्द्व को आर्य तथा अनार्य संस्कृति के बीच का संघर्ष दरसा कर परम्परागत रामकथा को अधुनातन रूप दिया है। 'साकेत' उस काल की सृष्टि है जबकि देश–परतंत्र था (अंग्रेज यहाँ की लक्ष्मी हर प्रकार से अपने देश उठाये लिये जा रहे थे और हम सब निरूपाय बने देख रहे थे। भारत माता एक प्रकार से अंग्रेजों के बंदीगृह में थीं। गुप्त जी ने तद्‌युगीन इस निर्मम सत्य की रामकथा से ऐसी संगति बिठायी कि जैसे हजारों वर्ष प्राचीन कथा उस काल की हो। कवि ने सीता की परिकल्पना भारत माता के रूप में करते हुए उन्हें मुक्त कराने हेतु सम्पूर्ण देशवासियों का आह्वान किया है –

भारत–लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल वन में।[२]

महात्मा गाँधी गुप्त जी के (उस युग के) आदर्श पुरुष थे। इसलिए उनके इष्टदेव राम के चरित्र–सृष्टि में गाँधी जी का स्पष्ट प्रभाव है। राष्ट्रपिता द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलनों का साकेत में सामंजस्य कर कवि ने उसे युग–सापेक्ष बनाया।

(१) साकेत–१/१८–१६ (२) साकेत–१२/४५४

साकेत की सीता चित्रकूट में कोल–किरातों और भीलों की स्त्रियों के सन्निकट जाकर उन्हें अपनाती तथा आत्म निर्भरता का जो सन्देश देती हैं उस पर गाँधी जी का हरिजन तथा खादी–प्रेम स्पष्टतः परिलक्षित होता है–

ओ भोली कोल–किरात भिल्ल बालाओं।
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गयी आओ ।
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ हम कातें बुनें गान की लय में।। १

गुप्त जी में प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति पूर्ण आस्था है। इसीलिए दशरथ के कहने पर वन जाने को तत्पर राम से प्रजा जन का कहना है –

राजा मैंने राम तुम्हीं को है चुना,
करो न यूँ तुम हाय लोकमत अनसुना।

राम अनुनय-विनय से भी अप्रभावित रहते हैं और वन जाने को प्रस्तुत हैं। इस पर प्रजा द्वारा किया जा रहा सविनय अवज्ञा आन्दोलन द्रष्टव्य है –

'जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।
यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहाँ।। २

गाँधी जी सभी कार्यों को स्वयं करने के हिमायती थे। श्रम की महत्ता का अपने आचरण द्वारा सभी को संदेश देना गाँधी जी की विशेषता थी। साकेत की सीता चित्रकूट में अपने श्रम द्वारा कुटिया को राजभवन के ऐश्वर्य से मण्डित करती है। इस संदर्भ में उनकी स्वीकारोक्ति उल्लेखनीय है –

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।...
अपने आँचल से व्यजन आप झलती हूँ।...
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया ।३

(१) साकेत–८/२२७ (२) साकेत–५/१२६ (३) साकेत–८/२२३

गुप्त जी सती प्रथा के पक्षधर नहीं हैं। इसलिए दशरथ के निधन पर उनकी रानियाँ जब पति के साथ चिता में जलना चाहती हैं तो वे कुलगुरू वशिष्ठ से यह व्यवस्था दिलवाते हैं –

सहमरण के धर्म से भी ज्येष्ठ
आयु भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ।[1]

साकेत में राष्ट्रीय भावना के बहुविध पक्षों का अच्छा निरूपण हुआ है। स्वतंत्रता के लिए सतत् संघर्षरत युग में गुप्त जी ने साकेत की रचना की थी। इसीलिए उन्हें जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, स्वदेश का गौरव गान करने से वे नहीं चूके हैं –

विन्ध्य-हिमाचल-भाल, भला! झुक जाय न धीरों,
चन्द्र-सूर्य कुल-कीर्ति-कला रुक जाय न वीरों।"[2]

तुलसी के राम की भाँति साकेत के राम ब्रह्मस्वरूप नहीं लगते; बल्कि वे युग-उद्धारक महापुरूष प्रतीत होते हैं। यद्यपि महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने उन्हें ईश्वरावतार कहा है; तथापि राम का यह रूप कवि को रास नहीं आया। इसीलिए उसने अपने आराध्य को यथार्थ की भाव–भूमि पर चित्रित कर उनके आदर्श रूप की स्थापना की है।

६. **अयोध्यावासियों की रण–सज्जाः–** साकेत में कवि ने चरित्रों एवं परिस्थितियों की सृष्टि में मनोवैज्ञानिकता का पूरा ध्यान रखा है। पूर्ववर्ती राम काव्यों में संजीवनी बूटी के लिए आकाश मार्ग से जाते हनुमान को राक्षस समझ कर जब भरत उन्हें अपने बाण का लक्ष्य बनाकर पृथ्वी पर गिरा देते हैं तो हनुमान लंका में मूर्छित पड़े लक्ष्मण का वृतांत भरत को बताते हैं; किंतु सभी ऐसा समाचार पाकर भी निरूपाय दर्शाये गये है। भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, अयोध्यावासी किसी में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। यह असम्भव है, अमनोवैज्ञानिक हैं। गुप्त जी ने ऐसे अछूते और अव्यावहारिक पक्ष को अपने महाकाव्य में चित्रित कर राम काव्य परम्परा में अपनी मौलिक सूझ–बूझ का परिचय दिया। भरत–शत्रुघ्न, कैकेयी, ऊर्मिला और सम्पूर्ण सैनिक इत्यादि से रण–सज्जित हो लंका जाकर रावण का संहार करने को व्यग्र हैं।

---

(१) साकेत–७/२१० (२) साकेत–१२/४७५

कवि ने ऐसे मनोवैज्ञानिक तथा सामयिक महत्त्व वाले विषय की प्रेरणा जैन कवि रविषेण कृत 'पद्मपुराण' (सातवीं शताब्दी) से ग्रहण कर अपनी गुण–ग्राहकता का अच्छा परिचय तो दिया ही, साथ ही ऐसी विषम एवं गंभीर परिस्थिति को मार्मिक बना दिया है। रविषेण के 'पद्म पुराण' का लोक के बीच प्रचलन था, इसीलिए कवि ने लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार पाने पर अयोध्यावासियों में होने वाली जबर्दस्त प्रतिक्रिया (लंका जाकर राम के पक्ष में युद्ध करने हेतु रण–सज्जा करना) को साकेत के माध्यम से लोकप्रिय बनाया है। ऊर्मिला का रण–उद्धत वीरांगना रूप अति मोहक है, प्रेरक है।

सुमित्रा में विषाद और हर्ष की एक साथ अनुभूति तथा उदात्त अभिव्यक्ति के लिए संभवतः कवि गुप्त ने तुलसीकृत 'गीतावली' के निम्नांकित पद से प्रेरणा ली होगी –

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि काज संग्राम सुभट लोहे ललकारि लरे हैं।
पुनि–पुनि गात सुखात छिनहिं छिन हर्षित होत हरे हैं।[१]

७. भ्रातृ–प्रेम के भव्य रूप की स्थापना :– इसी क्रम में एक अन्य प्रेरक प्रसंग भी उल्लेखनीय है, जिसकी अवतारणा कर कवि गुप्त ने मौलिकता का परिचय दिया है। साकेत से पूर्व के राम- काव्यों में राम और उनके भाइयों के बीच भ्रातृ–प्रेम की प्रगाढ़ता का अत्यधिक चित्रण हुआ; किन्तु लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम दुःख से अचेत नहीं होते इसके विपरीत रावण को युद्ध भूमि में ही कुम्भकर्ण के संहार का समाचार मिलता है; जिसे सुनते ही वह इस असह्य दुःख से मूर्छित होकर रणभूमि में गिर पड़ता है। अतः राम स्वयं उसके प्रगाढ़ भ्रातृ–प्रेम की सराहना करते हैः–

हाय! किन्तु इसके पहले ही मूर्छित हुआ निशाचर-राज,
प्रभु भी यह कह गिरे-'राम से रावण ही सहृदय है आज ![२]

पूर्व वर्णित उल्लेखनीय मौलिक उद्भावनाओं के अतिरिक्त गुप्त जी ने परम्परागत रामकथा में कुछ अन्य परिवर्तन भी किये हैं।

(१) गीतावली, लंकाकाण्ड, पद–१५ (२) साकेत–११/४४६

उदाहरणार्थ–संजीवनी बूटी का भरत के पास होना तथा गुरू वशिष्ठ द्वारा रणोन्मत्त अयोध्यावासियों को अपने योग बल से दिव्य-दृष्टि प्रदान कर वहीं खड़े-खड़े लंका में होते युद्ध में मेघनाद एवं रावण आदि का संहार तथा सीता का उद्धार दिखाना है। कवि की इन उद्भावनाओं का कारण रामकथा सम्बन्धी समस्त घटनाओं को साकेत में ही घटित होते दर्शाना है; ताकि महाकाव्य के नामकरण का औचित्य सिद्ध हो सके; युद्ध के लिए सन्नद्ध भरत, शत्रुघ्न, ऊर्मिला एवं समस्त सेना को रोकने और संतोष देने के औचित्य की रक्षा हो सके। गुप्त जी ने दिव्य–दृष्टि द्वारा लंका के युद्ध को दिखाने की प्रेरणा निश्चय ही चलचित्र (सिनेमा से) प्राप्त की थी; क्योंकि दूरदर्शन उन दिनों (सन् २०३६तक) था नहीं। संजीवनी बूटी का भरत के पास होना तथा वशिष्ठ का योग-बल से अयोध्यावासियों को लंका–युद्ध दिखाना–ये दोनों ही उद्भावनायें हास्यास्पद है, औचित्य रहित है। महाकाव्य का 'साकेत' नाम देने से गुप्त जी को सम्पूर्ण रामकथा को मनोनुकूल तोड़ना–मरोड़ना पड़ा है। इससे कथा के सहज प्रवाह में अंतर तो आया ही है साथ ही 'विकृत' भी हुई है। अधिकांश रामकथा 'घटित' न होकर वर्णित है, सूच्य है। अतः अस्वाभाविक भी है। गुप्त जी को इस प्रकार कथानक को आगे-पीछे करने की प्रेरणा बंगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त कृत 'मेघनाद वध' से प्राप्त हुई थी; जिसका उन्होंने काव्यानुवाद भी (साकेत के रचनाकाल के मध्य ही) किया था।

उपर्युक्त कुछ कमियों के होते हुए भी रामकाव्य परंपरा में साकेत का महत्वपूर्ण स्थान है। 'रामायण' और 'मानस' के उपरांत 'साकेत' को ही लोकप्रियता प्राप्त हुई है। 'साकेत को यह गौरव प्राप्त होने का कारण परम्परागत रामकथा को युगीन संदर्भों में प्रस्तुत करना तथा उसे राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत करना है। यही कारण था कि 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' के लिए एक साथ प्रस्तुत साकेत और कामायनी महाकाव्यों में से निर्णायक मण्डल ने पुरस्कार 'साकेत' को दिया था। उसका तर्क था कि 'साकेत', 'कामायनी' की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक है; युगीन संदर्भों से अनुप्राणित है। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रपिता गाँधी ने गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया था।

प्रथम सर्ग का वैशिष्ट्य

'साकेत' महाकाव्य बारह सर्गों में विभक्त है। ग्रंथकार ने सर्गों का कोई नामकरण नहीं किया है। उन्होंने महाकाव्य के लक्षणों का पूरः ध्यान रखते हुए प्रथम सर्ग की रचना की है। इस सर्ग से भी पहले कवि गुप्त ने गणेश वंदना की, फिर सर्ग का प्रारम्भ काव्य की देवी सरस्वती की वंदना से किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने संस्कृत महाकाव्यों के लक्षणों का निर्वाह करते हुए साकेत का आरम्भ देवी-देवता की वंदना से कर अपनी आध्यात्मिक निष्ठा एवं प्राचीन परम्परा के पालक होने का परिचय तो दिया ही है, इसके अतिरिक्त उन्होंने महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह भी करना चाहा है। इस सर्ग में सरस्वती-वंदना के माध्यम से कवि के आस्था-विश्वास उसके काव्य-सृजन के उद्देश्य तथा दृष्टिकोण का सहज परिचय मिलता है। इस विचार से साकेत की आरम्भण पंक्तियाँ ध्यातव्य हैंः—

> अयि दयामयि देवि, सुखदे, शारदे,
> इधर भी निज वरद-पाणि पसार दे।
> दास की यह देह-तन्त्री सार दे,
> रोम-तारों में नई झंकार दे।
> बैठ, आ, मानस-मराल सनाथ हो,
> भार-वाही कण्ठ-केकी साथ हो।
> चल अयोध्या के लिए, सज साज तू,
> माँ, मुझे कृतकृत्य कर दे आज तू।[१]

गुप्त जी आस्थावादी कवि हैं। वे सरस्वती को काव्य की देवी तो मानते ही हैं, इसके अतिरिक्त उसके कोमल (दयालुता पूर्ण) स्वभाव से भी वे भली-भाँति परिचित हैं। इसीलिए उन्होंने उन्हें 'दयामयि' कहा है।

(१) साकेत– १/१७

अब तक जितने भी कवि हुए हैं, वे सरस्वती की कृपा से काव्य-सृजन में सफल रहे हैं। इसी आस्था और सरस्वती की कृपा के निश्चित रूप से प्राप्त होने वाले विश्वास को ये शब्द रेखांकित करते हैं। कवि मनोनुकूल साकेत की सर्जना के लिए व्यग्र है, इसे पूर्ण करने पर उसे जिस अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होगी 'सुख' शब्द उसी का द्योतन कराता है।

कवि ने साकेत की रचना रामकाव्य-परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान पाने के लिए की है। वह राम-भक्त है। अतः इष्टदेव पर महाकाव्य की रचना का संकल्प लेना कवि के लिए स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक था। इसके अतिरिक्त उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि **'साकेत' का रामपरक् काव्यों में विशिष्ट स्थान हो।** यह स्थान तभी होगा जब कवि लीक (परम्परा) से अलग हटकर काव्य-रचना करें। गुप्त जी ने साकेत में परम्परागत राम-काव्य से कुछ हटकर कहा है। इसके लिए उन्होंने माँ सरस्वती से वंदना की है–''**रोम-तारों में नई झंकार दे।**' ये नवीन उद्भावनाएं ही उन्हें रामकाव्य में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने वाली हैं।

साकेत मधुर काव्य हो, वह विविध राग-रागनियों से युक्त हो, इसके लिए ही कवि सरस्वती से 'कण्ठ–केकी' तथा 'सज-साज' (सभी काव्यगत विशेषताओं से युक्त) की प्रार्थना करता है।

गुप्त जी ने अपने काव्य का नाम 'साकेत' रखा है, जिसका अर्थ 'अयोध्या' है। इसीलिए उन्होंने ने काव्य की देवी से आग्रह किया है कि वह उसके 'मानस-मराल' पर आरूढ होकर अयोध्या (साकेत) चले, जो सारी रामकथा का केन्द्र-बिन्दु तो है ही, साथ ही कवि के महाकाव्य की धुरी भी है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग की रचना के समय खड़ीबोली का कविता में प्रयोग आरम्भ ही हुआ था। वह भली-भाँति मँजी न थी और न पूर्ण समर्थ बन पायी थी। इसे ''इधर भी निज वरद-पाणि पसार दे।'' पंक्ति में देखा जा सकता है। वर प्रदान करने वाला हाथ पसरा (पसार) या फैला नहीं होता। दाता की हथेली नीचे होती है, याचक की ऊपर। वरद् हस्त की आकृति से भिन्न कवि की उक्ति का कारण उस काल तक

खड़ीबोली का समर्थ काव्य-भाषा न बन पाना था; कालान्तर में गुप्त ने ही अपने निरन्तर काव्य-सृजन द्वारा खड़ीबोली को प्रांजल तथा समर्थ भाषा का रूप दिया था।

प्रथम सर्ग इस महाकाव्य की पृष्ठभूमि है, नींव है, जिस पर सम्पूर्ण ग्रंथ-प्रासाद आधारित है। प्रथम सर्ग का कथानक और उसके चरित्र समग्र साकेत के उद्देश्य, कवि की रचना-धर्मिता, मौलिकता, प्रासंगिकता, कलात्मकता, प्रभावोत्पादकता, वैचारिक प्रौढ़ता, विराटता एवं उसकी भक्ति-निष्ठा का सहज परिचय कराते हैं। गुप्त जी आस्थावान कवि थे। अतः कवि-जीवन की चिर-अभिलाषा की तुष्टि हेतु उन्होंने इस काव्य की रचना की है। यह ग्रंथ उनकी १४-१५ वर्षों की अटूट आस्था, विश्वास तथा साधना का शब्दबद्ध स्वरूप है।

कवि वाग्देवी से काव्य के समस्त उपकरणों के साथ अयोध्या चलने का आग्रह करता है; ताकि उसका कवि-जीवन सार्थक हो जाय। वह अपने जीवन को धन्य बना सके। गुप्त जी अयोध्या के माहात्म्य का उद्घाटन भी बड़ी उत्कण्ठा और नाटकीयता के साथ करते हैं; जिससे कि वे सहृदय पाठकों का ध्यान अपने काव्य की ओर आकृष्ट कर सकें। सर्ग में अयोध्या की महिमा-गरिमा के औचित्य की व्यंजना प्रत्येक भावज्ञ एवं रसज्ञ पाठक को अभिभूत करती है।

ऊर्मिला गुप्त जी की मानस-पुत्री है। साकेत के प्रथम सर्ग में ही कवि ने उसकी अवतारणा अत्यन्त नाटकीय एवं कौतूहलपूर्ण ढंग से की है :-

अरुण-पट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में ?[1]

साकेतकार ने ऊर्मिला के सौन्दर्य-चित्रण में दो प्रकार की शैलियाँ अपनायीं हैं। एक तो परम्परागत भक्ति एवं रीतिकालीन मांसल तथा अतिरंजित और दूसरी अनुभूतिपरक सूक्ष्म या अतीन्द्रिय। दोनों के क्रमशः उदाहरण ध्यातव्य हैं:-

(१) जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्म रागों से अधर मानो बने;
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने ।[2]

---

(१) साकेत–१/२६ (२) साकेत–१/२७

(२) स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला;
नाम है इसका उचित ही "ऊर्मिला" ।
शील-सौरभ की तरंगे आ रहीं,
दिव्य-भाव भवाब्धि में हैं ला रहीं।[१]

ऊर्मिला के शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण में जो मांसलता आयी हैं, उसका प्रमुख कारण 'ऊर्मिला' पर काव्य–सृजन की प्रेरणा देने वाले भावज्ञ एवं रसज्ञ इंजी० छोटे लाल वार्हस्पत्य का स्पष्ट निर्देश था कि 'आपकी ऊर्मिला तुलसी की सीता की भाँति अशरीरी न हो।' इसीलिए कवि ने उसकी मांसलता का ध्यान रखते हुए परम्परागत शैली का प्रयोग किया है। इस मांसलता का दूसरा कारण कवि गुप्त का संस्कृत कवि एवं नाटककार कालिदास से सर्वाधिक प्रभावित होना भी है।

प्रथम सर्ग की रचना में परम्परागत राम काव्यों से साकेत के सौन्दर्य–चित्रण में कुछ अन्तर है। जिस प्रकार 'कुमारसंभव' में कालिदास ने पार्वती के सौन्दर्य में मांसलता या ऐन्द्रिकता पर विशेष बल दिया है उसी प्रकार से गुप्त जी ने भी कुछ अंशों में कालिदास की शैली को अपनाया है। साकेत नगरी को नागरी मानकर कवि ने उसके चित्रण में भी कुछ वैसी ही मांसलता ला दी है।[२]

ऊर्मिला और लक्ष्मण के बीच संवादों के आदान-प्रदान में प्रेम की प्रगाढ़ता तो है ही, हास-परिहास की अवतारणा भी मनौवैज्ञानिक है। इस वर्णन के मध्य लक्ष्मण की उक्तियों में परम्परागत वह उदात्तता और मर्यादा नहीं, जिसे पाठक रामकाव्यों में अब तक देखते आये थे। वस्तुतः 'साकेत' के लक्ष्मण का चरित्र यथार्थ की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित है। इस सर्ग में आयी श्रृंगारिकता भी कालिदास के प्रभाव का परिणाम है। ऊर्मिला के बहुमुखी व्यक्तित्त्व के लगभग सभी प्रमुख पक्षों की आंशिक झलक कवि ने छायावादी अदाज में इस सर्ग में दी है।

भारतीय संस्कृति के आख्याता गुप्त जी में नारी-जाति के प्रति विशेष सम्मान एवं करुणा का भाव रहा। यही कारण है कि उनके

---

(१) साकेत–१/२८ (२) साकेत–१/१६
केतुपट अंचल-सदृश हैं उड़ रहे, कनक कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे।

अधिकांश काव्य नारी-वर्ग पर आधृत हैं। जो काव्य नारियों के नाम पर नहीं हैं उनमें भी नारी-महिमा का गान है, यथा 'साकेत' में। इस प्रबन्धकाव्य के प्रथम सर्ग में नारी के अधिकारों की जहाँ अनुगूँज है, वहीं त्यागमयी, अनुरागमयी भारतीय नारी की स्तुति गुप्त जी ने पुरुष-समाज के प्रतिनिधि लक्ष्मण द्वारा करायी हैः–

जन्म-भूमि-ममत्व कृपया छोड़कर,
चारु-चिन्तामणि-कला से होड़कर,
कल्पवल्ली-सी तुम्हीं चलती हुई,
बाँटती हो दिव्य-फल फलती हुई।[१]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के अन्तर्गत सभी शब्दों में समाहित अर्थ की गहराई और गौरवशीलता विचारणीय है। उनमें भी 'कृपया' और 'चारुचिन्तामणि' शब्द सर्वाधिक ध्यातव्य हैं। जननी एवं जन्मभूमि का प्रेम अविस्मरणीय होता है; पर एक नारी ही होती है जो जन्मभूमि और माता–पिता के घर को भुलाकर जिसके साथ ब्याह दी जाती है-उस वर, घर और स्थान को सदैव के लिए अपना मान बैठती है। यह पुरुष वर्ग के लिए कदापि संभव नहीं। इस प्रकार पुरुष-समाज पर यह नारी वर्ग की महती कृपा ही कही जानी चाहिए। 'चिन्तामणि' व्यक्ति को सारी चिन्ताओं और अभावों से रहित करती है। नारी वह चारु (सुन्दर) चिन्तामणि है जो पुरुष और उसके परिवार की सभी चिन्ताओं को अपने पर ओढ़ लेती है और पति को चिन्तामुक्त बनाने हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। इस प्रकार नारी मानव-जाति के विकास का मूलाधार है। उसकी संतानें ही वह दिव्य फल हैं जिनके आनन्द-रस के स्वाद को व्यक्ति अनुभव करता है; पर उसे वह पूर्णतः व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाता है।

प्रथम सर्ग में साकेतकार ने राम के ईश्वरत्व को पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार किया है, क्योंकि तुलसी ने राम की स्थापना जिस उच्च भाव-भूमि पर की, उससे छेड़-छाड़ करने का साहस गुप्त जी नहीं कर सके। यद्यपि वे 'सख्यभाव' के रामोपासक हैं, ऐसा होते हुए भी उस 'महच्चरित' के साथ मनोनुकूल व्यवहार करने का 'साहस' गुप्त जी ने नहीं

(१) साकेत–१/३२

किया है। यद्यपि लक्ष्मण के प्रति उनका व्यवहार 'दोस्ताना' है, इसीलिए साकेत के लक्ष्मण गुप्त जी के परम निकट हैं। वे भले ही शेषावतार हैं; पर मैथिलीशरण ने उन्हें पूर्ण मानवोचित रूप में प्रस्तुत किया है। नवदम्पति के प्रेम का उद्दाम रूप साकेत के प्रथम सर्ग में देखा जा सकता है। इस सर्ग में तुलसी जैसी दास्य-भक्ति न होकर सख्य भक्ति की प्रधानता है। सर्ग के शृंगार-वर्णन में कवि कहीं संकोच में नहीं पड़ा; क्योंकि उसकी स्वीकारोक्ति है–"सीता राम के समीप मुझे जो भय लगता है, वह ऊर्मिला और लक्ष्मण के समीप नहीं।"[१]

साकेत-सृजन की मनोभूमि पर प्रकाश डालते हुए गुप्त जी ने ऊर्मिला-चरित्र की अवतारणा के औचित्य एवं मौलिकता के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी को लिखे पत्र में स्पष्ट किया है–"मुख्यतया ऊर्मिला की अनुभूति और अपनी रचना में मौलिकता की इच्छा पर ही साकेत का अस्तित्व है।"[२]

गुप्त जी की कविता का मूल उत्स राष्ट्र-प्रेम है। साकेत के प्रथम सर्ग में भी उनकी राष्ट्रीय भावना का उदात्त स्वरूप अनेक स्थलों पर विद्यमान है। मैथिलीशरण जी अखण्ड भारत के प्रबल पक्षधर थे। उनके विचार से छोटे–छोटे राज्यों का होना राष्ट्र-शक्ति का बिखरना है। आज जब प्रदेशों का विभाजन राजनीतिक स्वार्थों के कारण हो रहा है, गुप्त जी का निम्नांकित विचार कितना प्रासंगिक और उपयोगी है–

एक राज्य न हों, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।[३]

देश की सुख–शांति, समृद्धि एवं सुदृढ़ता के लिए भावात्मक एकता आवश्यक है। यह एकता पारस्परिक सौहार्द्र द्वारा ही सम्भव है। गुप्त जी इस वास्तविकता से सुपरिचित थे। 'साकेत' काव्य में कवि ने अयोध्यावासियों की 'सुमति' एवं 'रहनि' को आदर्श माना है। प्रकारान्तर से वे देशवासियों को उसी प्रकार हिल–मिलकर रहने की प्रेरणा देते हैं–

एक तरु के विविध सुमनों से खिले, पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी, वाह्य भोगी आन्तरिक योगी सभी।।[४]

(१) नवम सर्ग का वैभव–सहल, १४१ (२) दे०–वही,१४१ (३) साकेत–१/२४
(४) साकेत–१/२२

परतंत्रता के उस काल में भी गुप्त जी स्वदेश के गौरव-गान को विस्मृत नहीं करते–

धन्य भगवद्–भूमि भारतवर्ष है।[१]

साकेत के प्रथम सर्ग की एक विलक्षणता यह भी है कि तूलिका की धनी ऊर्मिला ने राम के राज्याभिषेक से पूर्व ही उससे सम्बन्धित एक भव्य चित्र का निर्माण किया है जिसमें वे लोग भी दिखाये गये हैं जो इस अवसर विशेष पर नहीं पहुँच रहे हैं। चित्र की यह विशेषता विलक्षण है, विचित्र है। इस पर साकेतकार ने लक्ष्मण के माध्यम से कला की पूर्णता तथा उसके उद्‌देश्य पर अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। गुप्त जी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। आचार्य प्रवर 'कला को समाज के लिए' मानने और मनवाने के प्रबल पक्षधर थे। इसीलिए वे साहित्य में 'यथार्थ' के स्थान पर 'आदर्श' की स्थापना के लिए सदैव तत्पर रहे। द्विवेदी जी ने अपने शिष्यों को भी प्रेरणा और संस्कार दिये। इसीलिए मैथिलीशरण जी ने साकेत के प्रथम सर्ग में कला को पूर्णता का प्रतीक मानते हुए उसके माध्यम से आदर्श की स्थापना पर बल दिया हैः–

जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।
हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए।
चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये।[२]

'साकेत' में लक्ष्मण और ऊर्मिला के संवादों में पर्याप्त नाटकीयता है जो गीतिनाट्य का अहसास कराती है। सफल संवाद-योजना की यह विशेषता होती है कि प्रथम वक्ता ने अपने संवाद में जिस विचार पर विशेष बल दिया हो उसी पर अगला वक्ता कम से कम शब्दों में अपने

---

(१) साकेत–१/१६ (२) साकेत–१/३७

विचार व्यक्त करे। यह विशेषता साकेत के प्रथम सर्ग में नैसर्गिक रूप में विद्यमान है। इस प्रकार नाटकीयता का सम्यक् निर्वाह साकेत की प्रथम सर्ग की एक प्रमुख विशेषता है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में पीयूषवर्ष नामक छंद का कवि ने सम्पूर्ण सर्ग में प्रयोग किया है। इस छंद में १६ मात्रायें होती हैं, जिसमें १० एवं ६ मात्राओं पर यति होती है तथा अंत में क्रमशः लघु-गुरु का निर्वाह होता है। फारसी के बहर छंद से मिलता-जुलता पीयूषवर्ष छंद हास-परिहास के लिए बहुत उपयुक्त माना गया है।

'साकेत' को गुप्त जी महाकाव्योचित गरिमा देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने सर्ग के अंत में पीयूषवर्ष छंद को बदलकर रूपमाला छंद का प्रयोग किया है। २४ मात्राओं वाले इस छंद में १४ और १० मात्राओं पर यति होती है तथा अंत में गुरु-लघु (SI) वर्ण होते हैं। वर्णमाला छंद के बाद भी कवि ने १५ मात्राओं वाले चौपाई छंद का प्रयोग किया है। इस छंद के अंत में भी गुरु-लघु होते हैं।

नवम सर्ग का काव्य-वैभव

तुलसी कृत 'रामचरितमानस' में जो महत्व अयोध्याकाण्ड का है, मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' में वही महत्व नवम सर्ग का है। अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि तुलसी ने सर्वप्रथम अयोध्याकाण्ड की रचना की थी। इसी प्रकार गुप्त जी ने सर्वप्रथम नवम् सर्ग की रचना की; जिसे उन्होंने 'ऊर्मिला उत्ताप' नाम दिया था। कवि गुप्त ने आचार्य द्विवेदी के 'कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक निबंध को सरस्वती में पढ़ने के उपरान्त ऊर्मिला पर लिखने का मन बनाया था; किन्तु उन्हें प्रत्यक्षतः सर्वाधिक प्रेरित और निर्देशित करने वाले व्यक्तित्व थे इंजीनियर छोटे लाल वार्हस्पत्य जिन्होंने एक पत्र लिखकर इस दिशा में कवि गुप्त को प्रेरित किया। विरहिणी ऊर्मिला का स्वरूप कैसा हो, उसके विरह-वर्णन की सामग्री का क्या रूप हो? इन सारे पक्षों पर इं० छोटेलाल ने गुप्त जी को मार्गदर्शन दिया था। इस प्रकार नवम सर्ग की भाव सम्पदा पर इं० छोटेलाल वार्हस्पत्य का विशेष प्रभाव स्वीकार करना उचित होगा।

'साकेत' का नवम सर्ग ऊर्मिला के विरह-वर्णन पर पूर्णतः आधारित है। चौदह वर्ष का विरह काल अत्यन्त विस्तृत होने के कारण उसे काटना विरहिणी के लिए असह्य है। इसीलिए गुप्त जी ने अपनी इस मानस-पुत्री के प्रति सम्पूर्ण संवेदना और सहानुभूति व्यक्त करते हुए इस विप्रलम्भ श्रृंगार को करुण रस के अर्न्तगत लिया है और इसके परिप्रेक्ष्य में उन्होंने भवभूति तथा उनके 'उत्तररामचरित' का उल्लेख करते हुए 'साकेत' के नवम् सर्ग के वियोग को करुण रस की कोटि में रखा है।[१]

---

(१) करुणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई–
"मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई?" साकेत–६/२६७

नवम सर्ग के विरह-वर्णन में विरह की सभी दस दशाओं का कवि ने निर्वाह किया है।[१] वार्हस्पत्य जी के निर्देशानुसार इसमें षट्-ऋतु–वर्णन और बारहमासा को भी समुचित स्थान मिला है।

'साकेत' के विरह वर्णन में परम्परा और प्रयोग या मौलिकता का सामंजस्य है। भक्ति और रीतिकालीन विरह-वर्णन की अतिरंजना या अतिशयोक्ति भी इसी कृति के नवम सर्ग में है,इसके अतिरिक्त छायावादी अन्दाज में भाव-प्रवणता की प्रधानता भी है।

परम्परागत विरह वर्णन और 'साकेत' के विरह वर्णन में जो अन्तर है वही कवि गुप्त की मौलिकता है। जायसी, सूर और बिहारी इत्यादि कवियों के काव्य में विरहिणी प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को देखकर प्रायः उन्हें कोसती हैं; पर 'साकेत' की विरहिणी बाला प्रकृति के परिवर्तनों का सहर्ष स्वागत करती है, उन्हें अपनाती है। विभिन्न ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों में ऊर्मिला अपने प्रिय की झलक पाती है। यथा–जब खंजन पक्षी राजोद्यान में पहुँचते हैं, ऊर्मिला उनके आगमन के आधार पर शरद ऋतु के आगमन के स्पष्ट संकेत पाती है और सखी से कहती है :–

निरख सखी, ये खंजन आये।
फेरे उन मेरे रंजन ने नैन इधर मन भाये।[२]

विरह के कारण ऊर्मिला में सहन शक्ति तो आई ही है, साथ ही उसके दृष्टिकोण में विराटता भी आ गयी है। परिणामतः इस विरह काल में ही ऊर्मिला का ध्यान शेष सृष्टि की ओर गया है और उसने दुखीजनों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है।

इस प्रकार नवम सर्ग में गुप्त जी ने ऊर्मिला के उदात्त चरित्र का गौरव-गान किया है। वह भारतीय नारी का जाज्वल्यमान रूप है। विषम परिस्थितियों ने उसे अत्यंत विकल तो अवश्य किया है, पर उन्हें विशेष सफलता नहीं, अपितु विफलता ही मिली है। इससे ऊर्मिला के व्यक्तित्व की असाधारणता उत्तरोत्तर निखरती चली गयी है; जिसने उसे 'देवी' (दिव्य गुणों वाली) बना दिया है–

---

(१) देखिए इसी समीक्षा कृति में 'ऊर्मिला विरह–वर्णन। (२) साकेत–६/२६६

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला ;
नाम है जिसका उचित ही "ऊर्मिला"।
शील-सौरभ की तरंगे आ रहीं,
दिव्य-भाव भवाब्धि में हैं ला रहीं।१

द्विवेदी युग में लोकमंगल प्रधान काव्यों के सृजन का चलन था। उस काल में कविता केवल मनोरंजन के लिए नहीं; बल्कि लोक कल्याण के लिए लिखी जाती थी। नवम सर्ग (पुराना नाम 'ऊर्मिला उत्ताप') और इसकी नायिका लोक कल्याण की भावना से आद्योपांत ओत-प्रोत है।

ऊर्मिला और उसका विरह 'साकेत' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता एवं उपलब्धि है। इस विरहाग्नि में तपकर ही ऊर्मिला का व्यक्तित्व कुंदन संदृश दमका और मूल्यवान बना है। अतः विरह–वर्णन और ऊर्मिला को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

नवम सर्ग में गुप्त जी ने चित्रकूट-वर्णन द्वारा उसके माहात्म्य, प्राकृतिक सौंदर्य, व्यक्तित्व की उदारता तथा लक्ष्मण-ऊर्मिला-भेंट-प्रसंग को मनोवैज्ञानिक आधार देते हुए प्रस्तुत किया है। इसी बहाने कवि ने अपना राष्ट्र-प्रेम भी व्यक्त किया है। यही नहीं, रामभक्त कवि ने आराध्य के धाम के प्रति अपनी निष्ठा भी प्रस्तुत की है। इसी चित्रकूट-वर्णन में कवि ने चित्रकूट का मानवीकरण करते हुए उसके विराट व्यक्तित्व को पाठक के समक्ष लाकर उसके अनुरूप ही चरित्र-निर्माण की प्रेरणा दी है।२

विरहिणी ऊर्मिला के दृष्टिकोण में आयी व्यापकता के फलस्वरूप ही वह जनता की, उपज (पैदावार) की, शिक्षा की तथा समाज की दुःखी महिलाओं की खोज-खबर लेती है, उसे जीवन और जगत की परिवर्तनशीलता एवं प्रिय से पृथक अपनी सत्ता का सम्यक् ज्ञान होता है। इस प्रकार विरह ने ऊर्मिला के व्यक्तित्व को महिमा-मंडित करने में विशेष भूमिका निभायी है।३

कवि के बहुज्ञ होने से उसका तथा उसकी रचना का महत्व बढ़ता है। 'साकेत' की ऊर्मिला वीणावादिनि तो है ही, साथ ही वह कुशल

(१) साकेत–१/२८ (२) दे०–साकेत–६/२७५ (३) दे०–सकेत–६/२८०–२८१

चित्रकर्त्री भी है। ऊर्मिला के व्यक्तित्व का निर्माण करते हुए गुप्त जी ने वस्तुतः अपने व्यक्तितत्व को ही उद्घाटित कर दिया है। उनके पिता सेठ रामचरण 'कनकने' संगीत-प्रेमी थे। 'उनके यहाँ प्रमुख वाद्य यंत्र सदैव तैयार स्थिति में रहते थे।' अभिप्राय यह है कि गुप्त जी के यहाँ संगीतकारों का आगमन और संगीत सभाओं का आयोजन समय समय पर होता रहता था; वहीं बैठकर उन्होंने संगीत का ज्ञान अर्जित किया। नवम सर्ग में शास्त्रीय संगीत की विविध राग-रागिनियों पर आधारित गीत और छंदों की रचना भी गुप्त जी ने की है। इसके अतिरिक्त इस सर्ग में 'दिर-दार-दारा' तथा 'आलाप-विलाप' जैसे शब्दों के सटीक प्रयोग से स्पष्ट है कि गुप्त जी को संगीत का सम्यक् ज्ञान था।

नवम् सर्ग में **'लाना लाना सखि तूली'** गीत में कवि ने जो भावचित्र प्रस्तुत किया है, उससे गुप्त जी की चित्रकला में अच्छी पैठ होने का प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार 'रुदन्ती' औषधि की रचना-पद्धति के उल्लेख से गुप्त जी के आयुर्वेद विषयक ज्ञान का भी परिचय मिलता है।

'साकेत' के नवम सर्ग में न तो किसी प्रबन्ध काव्य जैसा कथा में प्रवाह दिखाई देता है, न उसमें समुचित व्यवस्था या क्रमबद्धता ही परिलक्षित होती है। यह सारा सर्ग मुक्तक काव्य जैसा लगता है। छन्दों को परस्पर जोड़ने के लिए कवि ने कुछ पंक्तियाँ जोड़ के रूप में अवश्य रखीं हैं; पर इससे छन्दों की स्वतन्त्रता छिपी नहीं हैं। अतः यह कहना असंगत न होगा कि नवम् सर्ग में 'साकेत' की प्रबन्धात्मकता बाधित है।

बंगला के कवीन्द्र रवीन्द्र को उन्हीं दिनों 'गीतांजलि' पर 'नोबुल पुरस्कार' मिला था। अतः प्रसाद, मैथिलीशरण प्रभृति कवियों ने टैगोर से प्रेरणा लेकर गीति-शैली को अपने काव्य में स्थान दिया। 'साकेत' के नवम सर्ग में गीत, गीति, प्रगीत तथा सम्बोधि गीति मिलते हैं, जिनमें भावपक्ष की प्रधानता है। इन गीतों ने नवम सर्ग में सरसता, जीवन्तता, प्रवाहमयता तथा मनोवैज्ञानिकता ला दी है। 'साकेत' में प्रयुक्त इस गीति-योजना ने नवम् सर्ग के काव्य-वैभव में निश्चय ही वृद्धि की है। ये गीत, प्रगीत,

सुसाहित्यिक एवं स्तरीय हैं। विरहिणी ऊर्मिला की कोमल भावनाओं, अनुभूतियों, इन्द्रधनुषी कल्पनाओं अथवा वायवी उड़ानों को शब्दबद्ध करने में गीति–योजना से कवि को अच्छी सफलता मिली है।

नवम् सर्ग के काव्य–वैभव की वृद्धि में काव्य भाषा खड़ीबोली का विशिष्ट योगदान है। गुप्त जी ने खड़ीबोली के खड़ेपन को इस सर्ग में इतना माँजा और सँवारा है कि भाषा का खड़ापन या उसकी कर्कशता विलीन हो गयी। भले ही हरिऔध ने 'प्रिय प्रवास' के रूप में खड़ीबोली का पहला महाकाव्य रचा हो, पर भाषा का प्रांजल और सुष्ठ रूप पहले-पहल 'साकेत' में ही उपलब्ध है।

सजी-सँवरी एवं प्रवाहमयी खड़ीबोली के रूप-दर्शन हेतु निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :–

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग तो जलता ही है ! दीपक भी जलता है ![१]

गुप्त जी बुन्देलखंड के हैं, अतः उन्होंने बुंदेली के शब्दों, कहावतों और मुहावरों को भी 'साकेत' में स्थान दिया है; किंतु कहीं-कहीं प्रयुक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो काव्य की सरसता और प्रवाहमयता को बाधित करते हैं। गुप्त जी के समय में खड़ीबोली प्रयोगावस्था में थी। इसलिए 'साकेत' के नवम सर्ग में भी खड़ीबोली के कुछ त्रुटिपूर्ण प्रयोग हुए हैं। यथा :–

सखि नील नभस्सर में उतरा,
यह हंस अहा ! तरता–तरता,
अब तारक मौतिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता-चरता।[२]

उपर्युक्त काव्यांश के रेखांकित शब्दों का प्रयोग त्रुटिपूर्ण है। हंस तैरता है, तरता नहीं। इसी प्रकार हंस चुगता है, चरता नहीं। चरते तो गाय-बैल जैसे जानवर हैं। इतना सब होते हुए भी आचार्य द्विवेदी के निर्देशानुसार खड़ीबोली को काव्य-भाषा बनाने में गुप्त जी की ऐतिहासिक भूमिका है जो नवम सर्ग में उसके सफल प्रयोग के रूप में प्रत्यक्षतः देखी जा सकती है।

---

(१) साकेत–६/२८१ (२) वही, २८६

साकेतकार ने ऊर्मिला के दीर्घकालीन विरह को विशेष रूप से नवम सर्ग में प्रस्तुत किया है। विभिन्न कालों, अवस्थाओं तथा ऋतुओं के आधार पर ही गुप्त जी ने ऊर्मिला की अधीरता एवं अस्त-व्यस्त अवस्था को पाठक के मन मस्तिष्क में उतारने हेतु विविध प्रकार के छंदों की झड़ी लगा दी है। इसीलिए कतिपय आलोचकों ने इस सर्ग को **छंदों का अजायबघर** कहा है। आलोच्य संर्ग में गुप्त जी ने वर्णिक और मात्रिक छंदों के साथ ही नवीन प्रगीति-शैली पर रचित प्रगीत मुक्तकों को भी समुचित स्थान दिया है। कवि को गीति काव्य-सृजन की प्रेरणा रवीन्द्रनाथ टैगोर से भी कहीं अधिक माइकेल मधुसूदन दत्त से प्राप्त हुई थी। गुप्त जी द्वारा मधुसूदन दत्त के अनेक काव्यों का अनुवाद करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वर्णिक छंदों के अन्तर्गत गुप्त जी ने मंदाक्रांता, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित, भुजंगप्रयात, शिखरिणी, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा एवं वसंततिलका जैसे छंदों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार मात्रिक छंदों में उन्होंने दोहा, कवित्त, सवैया, अरिल्ल के अतिरिक्त कतिपय नवीन छंद भी दिये हैं। इन नवीन छंदों में गीतिका, शक्ति, सार तथा बरवै उल्लेखनीय हैं।

छायावादी कवियों की भाँति गुप्त जी ने आधुनिक युग में प्रचलित प्रगीत मुक्तकों का भी इस सर्ग में सफल प्रयोग किया है। इन प्रगीत-मुक्तकों की पहली पंक्ति टेक के रूप में होती है और गाने में ये मुक्त, मधुर कर्णप्रिय, मनोहर लगते हैं।[१] नवम सर्ग से सम्बन्धित इस विवेचन से स्पष्ट है कि साकेत की आत्मा कहा जाने वाला यह सर्ग वस्तु और शिल्प दोनों प्रकार से समृद्ध है, फिर भी विरह वर्णन की ऊहात्मकता अव्यावहारिक एवं कतिपय अन्य उक्तियाँ मनोवैज्ञानिकता से रहित हैं।

---

(१) विशेष सामग्री हेतु देखिए साकेत की गीति-योजना

मेघनाद वध

युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिचन्द्र ने जून १८७४ में हिन्दी वर्द्धिनी सभा में हिन्दी की उन्नति विषयक दिये गये व्याख्यान में कहा था-

विविध कला विद्या अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब भाषन से लै करहु, भाषा माहिं प्रचार।[1]

भारतेन्दु जी के कहने का अभिप्राय यह था कि हमें दूसरी भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अपनी भाषा में अनुवाद करना चाहिए। युगदृष्टा एवं युगस्रष्टा आचार्य महावीर प्रसार द्विवेदी ने हिन्दी के भांडार-वृद्धि विषयक हरिश्चन्द्र जी के विचारों के महत्व को समझा। उन्होंने अपने युग के साहित्यकारों को तदनुसार दिशानिर्देश भी किये। सन् १९१२ में प्रकाशित 'हिन्दी की वर्तमान दशा' शीर्षक लेख में महावीर प्रसाद जी ने हिन्दी के रचनाकारों का ध्यान 'पलासी का युद्ध', 'वृत्तसंहार', 'मेघनादवध' तथा 'यशवंतराव' जैसे बँगला महाकाव्यों की ओर आकृष्ट किया। फलतः गुप्त जी ने सर्व प्रथम माइकेल मधुसूदन दत्त के 'विरहिणी ब्रजांगना' का प्रजांगना' नाम से हिन्दी काव्य रूपांतर किया जिसका प्रकाशन सन् १९१५ में संभव हो पाया। इस कार्य को अंतिम रूप देने के उपरांत ही मैथिलीशरण जी ने माइकेल के कालजयी काव्य 'मेघनाद वध' का गम्भीर पारायण और उसका हिन्दी काव्य रूपांतर-कार्य प्रारम्भ किया। इस काव्यानुवाद के पूर्ण होने के समय का निश्चित उल्लेख नहीं मिलता, पर गुप्त जी के सम्पूर्ण रामकाव्यों- लीला (सन् १९१८-१९), पंचवटी (सन् १९२५), साकेत (१९३२) तथा साकेत के बाद

(१) भारतेन्दु ग्रंथावली-१, हिन्दी की उन्नति (२) देखिए मेघनाद वध निवेदन, प्रथम पृष्ठ।

प्रकाशित प्रदक्षिणा- पर माइकेल के 'मेघनाद वध' का व्यापक प्रभाव नकारा नहीं जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि 'मेघनाद वध' का हिन्दी रूपांतर मैथिलीशरण जी के रामकाव्यों के सृजन के पूर्व हो चुका था। यद्यपि गुप्त जी द्वारा सम्पन्न इस रूपांतर का प्रकाशन सन् १९२६ में संभव हुआ, परन्तु इसकी स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे सन् १९१८-१९ में रचित कवि गुप्त के 'लीला' काव्य की, जिसका प्रकाशन सन् १९६० में संभव हुआ। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना भी उचित ही है कि श्री गुप्त ने 'मेघनाद वध' का रूपांतर 'मधुप' नाम से किया था।

माइकेल मधुसूदन दत्त अपने व्यक्तिगत जीवन में अत्यंत स्वच्छन्द, परम्परा-विरोधी, विलासी तथा अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं के लिए सभी की चर्चा के विषय रहे। उनमें अँग्रेजी के प्रति अपार प्रेम था। वास्तव में वह अंग्रेज बनने के लिए व्यग्र रहते थे। अँग्रेज़ रमणियों से प्रेम और विवाह करने की उनमें जो अधीरता थी, उसी के फलस्वरूप उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करना पड़ा और तभी से उनके नाम के पहले 'माइकेल' शब्द जुड़ गया। मधु सूदन का खान-पान, पहिनावा एवं विवाह इत्यादि सभी अंग्रेजों की तरह के थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं, और दोनों ही अँग्रेज थीं। उन्होंने इंग्लैंड जाकर अपनी रही-सही अँग्रेज़ियत को भी पूरा करना चाहा था, पर अंग्रेजों ने न तो उन्हें अँग्रेज माना और न उनके अँग्रेजी ज्ञान अथवा उनके द्वारा अँग्रेजी में प्रणीत कृतियों को समुचित मान्यता एवं आदर दिया। फलतः मधुसूदन दत्त में ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई। फलतः अपनी अनपेक्षित मनोकामनाओं को तिलांजलि देकर वह मातृभाषा बँगला की सेवा में लग गये।

'मेघनाद वध' मधुसूदन दत्त का कालजयी महाकाव्य हैं। इसकी कथावस्तु मात्र तीन दिन और दो रातों से सम्बन्धित है। इस कृति में माइकेल ने अपनी विराट कल्पना-शक्ति का परिचय देते हुए इसे वीर, श्रृंगार एवं करुण रस प्रधान प्रबंधकाव्य बनाया। अपने इस महाकाव्य के लिए उन्होने वाल्मीकीय रामायण, भवभूति कृत उत्तररामचरित और कालिदास कृत कुमारसम्भव के अतिरिक्त मिल्टन, होमर, टैसो, वर्जिल तथा दान्ते जैसे

पाश्चात्य साहित्यकारों की पैराडाइज लास्ट, इलियड, ऑडेसी, एनीड एवं डिवाइन कामेडी प्रभृति कृतियों से प्रभाव ग्रहण किया था।

माइकेल ने 'मेघनाद वध' की पात्र परिकल्पना के लिए कविवर हेमचन्द्र के 'वृत्तसंहार', काशीराम दास कृत 'महाभारत' और बाबू रंगलाल वन्द्योपाध्याय रचित 'पद्मिनी उपाख्यान' से प्रेरणा ली। मधुसूदन का मेघनाद यदि राजकुमार हेक्टर का आदर्श है तो उसकी पत्नी प्रमिला 'टेसो' काव्य की 'आर्मिडा' और बाबू रंगलाल वन्द्योपाध्याय की 'पद्मिनी' के विशेष निकट है।

माइकेल मधुसूदन दत्त उन्नीसवीं शताब्दी के किसी भी भारतीय भाषा के सबसे बड़े कवि थे। अपने व्यक्तिगत जीवन की भाँति ही वे साहित्यिक क्षेत्र में स्वच्छन्द थे, तभी उन्होंने अपनी कृतियों के वस्तु और शिल्प दोनों ही पक्षों में नूतन एवं साहसिक प्रयोग किये।

मधुसूदन दत्त के 'विरहिणी ब्रजांगना' का गुप्त जी पहले ही सन् १६१५ में 'ब्रजांगना' नाम से अनुवाद कर चुके थे। सन् १६१५ से 'साकेत' के प्रणयन में व्यस्त होने पर श्रीगुप्त ने उसी परिप्रेक्ष्य में माइकेल के सर्वश्रेष्ठ काव्य 'मेघनाद वध' का गम्भीर पठन-पाठन किया था। यह उदात्त महाकाव्य कवि गुप्त को इतना रास आया कि वे इसके हिन्दी रूपांतर के लिए कटिवद्ध हो गये। 'मेघनाद वध' से अनुप्राणित होने के फलस्वरूप ही उन्होंने अपने कथा काव्यों के मूल कथानकों में युगानुरूप परिवर्तन करने आरम्भ किये। इस प्रकार 'पंचवटी' उनकी पहली काव्य कृति है जिसमें उन्होंने प्राचीन वृत्तांत को नव्य एवं भव्य रूप में प्रस्तुत किया है।

मैथिलीशरण जी ने मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध' का जो हिन्दी-रूप प्रस्तुत किया, उसे अविकल अनुवाद कहना वस्तुतः अनुचित होगा। वास्तव में वह छायानुवाद के अधिक निकट है क्योंकि इस कृति में मूल काव्य से भिन्न गुप्त जी ने मनोनुकूल संशोधन परिवर्तन और परिवर्द्धन किये हैं। वह माइकेल द्वारा 'मेघनाद वध' में प्रयुक्त अमिताक्षर छंद तथा ओजस्विनी भाषा के प्रबल पक्षधर भी हैं।

माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद वध के काव्य रूपांतर के द्वारा श्री गुप्त उन्नीसवीं शताब्दी के इस असाधारण काव्य एवं असाधारण कवि से हिन्दी पाठकों का सीधा परिचय कराना चाहते थे। ऐसा नहीं कि मैथिलीशरण जी माइकेल की इस साहसिक नवीनता के पक्षधर रहे हों, पर इतना अवश्य है कि इस छायानुवाद ने उनके अपने काव्य-सृजन को नया आयाम दिया, जिसने युगांतर उपस्थित किया है। इसीलिए पौराणिक चेतना के नये संस्कार 'पंचवटी' के समय से ही कवि गुप्त के काव्यों में उत्तरोत्तर विकसित होते हुए देखे जा सकते हैं। इस काव्य-रूपांतर के अनंतर ही गुप्त जी ने अपने कथा काव्यों के मूल कथानकों में युगीन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में यथावश्यक परिवर्तन किये हैं। 'पंचवटी', 'साकेत' तथा 'द्वापर' में इस कथन की तथ्यपरकता को सहज ही आँका जा सकता है।

'मेघनाद वध' से मैथिलीशरण जी का पात्रों के प्रति अलौकिकता का व्यामोह भी टूटा है। इसीलिए उनके देव-कोटि के पात्र भी मानवोचित भावों, विचारों, संवेदनाओं एवं कार्य कलापों से युक्त होने के कारण विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। गुप्त जी आदर्शवादी कवि थे। माइकेल जैसे उन्मुक्त विचारक से वैचारिक धरातल पर सहमत हो सकना उनके लिए सम्भव न था। फिर भी उनके कथा काव्यों के पात्रों द्वारा व्यक्त विद्रोह-भावना पर किसी न किसी रूप में माइकेल का प्रभाव परिलक्षित होता है।

गुप्त जी अक्षरशः अनुवाद के पक्षधर न थे, क्योंकि वह काव्य के शास्त्रीय नियमों तथा काव्यसृजन में स्वयं पारंगत थे। इसीलिये उनके द्वारा किए गए काव्यानुवाद में मौलिकता के अंश बराबर मिलते हैं। उन्होंने मूल और अनुवाद के कहने के ढंग में भी अंतर किया है और कहीं-कहीं पर उन्होंने अपनी ओर से शब्द भी जोड़े हैं। यहीं नहीं, कुछ स्थलों पर कतिपय शब्द या काव्यांश छोड़ भी दिये हैं। आवश्यकता पड़ने पर कुशल अनुवादक ने परिवर्तन भी किया है ताकि मूल के दोष का परिहार किया जा सके। कवि गुप्त द्वारा किए गये ऐसे संशोधन, परिवर्द्धन तथा परिवर्तन उनकी मौलिक सूझ-बूझ के सहज प्रमाण हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मूल और छायानुवाद के

काव्यांश द्रष्टव्य हैं-

(१) मूल- अविदित नहे तब काछे[१]

छायानुवाद- इसे हो तुम जानते[२]

(२) मूल- पाषान दिया गड़िला विधाता हिया
तोर ....[३]

छायानुवाद- तेरा हिया पत्थर का है बना[४]

गुप्त जी द्वारा छोड़े गए शब्द-

(३) मूल- ....छाड़ द्वार याब अस्त्रागारे
पाठाइब रामानुजे शमन-भवने।[५]

छायानुवाद- .... द्वार पथ छोड़ दो
जाऊँ और लाऊँ अभी अस्त्र अस्त्रागार से
लक्ष्मण को शीघ्र पहुँचाऊँ यमलोक में।[६]

मूल के शब्द को हटाकर या घटाकर गुप्त जी ने नये काव्य-लालित्य की सृष्टि की है, यथा :-

(४) मूल- कुरंग, विहंग आदि मृग-शिशु यत
.... करभ करभी
आसि उतारिल सबे........................[७]
खग मृग आदि जीव आए[८]

(५) मूल- त्रासे हीन गति
पथिक, ...![९]

छायानुवाद- पथिक भीत, हीन गति होता है[१०]

---

(१) मेघनाद वध काव्य- माइकेल, पृ०-१७२ (२) मेघनाद वध - गुप्त पृ० ३२१
(३) मेघनाद वध-माइकेल, पृ०-११७ (४) मेघनाद वध - गुप्त पृ०-२६१
(५) मेघनाद वध काव्य-माइकेल पृ० १७३ (६) मेघनाद वध - गुप्त पृ०-३२३
(७) मेघनाद वध काव्य-माइकेल पृ० ११७ (८) मेघनाद वध - गुप्त पृ०-२६१
(९) मेघनाद वध काव्य-माइकेल पृ० १७० (१०) मेघनाद वध गुप्त पृ० ३१९

मधुसूदन दत्त ने अपने व्यक्तिगत जीवन की भाँति ही साहित्यिक क्षेत्र में भी जिस स्वतंत्र चेत्ता रूप का परिचय दिया, उसे सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र की उच्छृंखलता ही कहा गया था। मूल मेघनाद वध के पारायण से ऐसा प्रतीत होता है जैसे रावण के राजकवि ने इस ग्रंथ का प्रणयन किया हो। माइकेल ने आलोच्य काव्य में रामचन्द्र तथा लक्ष्मण को उनके आदर्श रूप से गिरा दिया है। यह बात प्रत्येक आस्थावान हिन्दू को खलने वाली है। स्वयं गुप्तजी ने भी कवि दत्त द्वारा भारतीयों की आस्था पर इस प्रकार से किये गये आघात को अनुचित बताते हुए परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता के स्पष्ट संकेत दिये हैं।[१] किन्तु मैथिलीशरण को उनके मान्य मित्रों ने माइकेल के दृष्टिकोण को परिवर्तित रूप में प्रस्तुत करने का सुझाव न देकर मूल कृति को उसके प्रकृत रूप में ही हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की सलाह दी थी।[२] इसीलिए गुप्त जी ने चाह कर भी उसमें परिवर्तन नहीं किया। इस संदर्भ में 'मेघनाद वध' मूल एवं रूपांतर की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

.. कहिला राघव
"दूतीर आकृति देखि डरिनु हृदये
रक्षोवर युद्ध - साध त्यजिनु तखनि
मूढ़ ये घांटाय सखे हेन बाघिनीं रे
चल मित्र देखि तव भ्रातृ-पुत्र-वधू।"[३]

प्रभु ने कहा यों-"मित्र, देख इस दूती की
आकृति, मैं भीत हुआ मन में, विसार के
तत्क्षण ही युद्ध-साज ! मूढ़ वह जन है,
छेड़ने चले जो ऐसी सिंहियों की सेना को,
देखूँ चलूँ मैं तुम्हारी भ्रातृ-पुत्र-पत्नी को।"[४]

---

(१) निवेदन, पृष्ठ-२६ (२) वही, पृष्ठ-३०
(३) मेघनाद वध काव्य, सं० ब्र० वन्दोपाध्याय तथा स० दास, पृष्ठ-६५
(४) मेघनाद वध काव्य, सं० ब्र० वन्दोपाध्याय तथा स० दास पृष्ठ-३६

तुलसी और गुप्त के राम किसी से डरते नहीं, पर कुशल अनुवादक होने के कारण गुप्त जी जैसे आस्थावादी कवि को अनुवाद के दौरान राम से यह कहना पड़ा- "मैं भीत हुआ मन में"। अनुवादक गुप्त ने ऐसा न चाहते हुए भी किया ताकि अनुवाद के भावों की पूर्ण रक्षा हो सके। कवि गुप्त ने मूल भाव अथवा विचारों के अंश का ही रूपांतर नहीं किया अपितु शब्द प्रतीकों का रूपांतर करने का सफल प्रयत्न किया है। इस परिप्रेक्ष्य में मूल और अनूदित काव्य के निम्नांश ध्यान देने योग्य हैं :-

(१) मूल - **अभिमाने महामानी वीरकुलर्षभ**
रावन, कहिला बली सिन्धु पाने चाहि,-
"कि सुन्दर माला आजि परियाछ गले,
प्रचेतः ! हा धिक्.................................।[1]

अनुवाद- **सिन्धु- ओर देख महामानी राक्षसेन्द्र यों**
बोला, अभिमान-वश-"क्या ही मंजु मलिका
पहनी प्रचेतः, आज तुमने, हा ! धिक है।[2]

(२) मूल - **यथा दूर दावानल पशिले कानने**
अग्निमय दश्दिश देखिला सन्मुखे
राघवेन्द्र विभा-राशि निर्धूम आकाशे,
सुवर्णि वारिध पुंजे !........................[3]

अनुवाद- **लगने से दावानल दूर यथा वन में,**
अग्निमयी होती हैं दिशाएं दसों, सामने
देखी विभा-राशि राघवेन्द्र ने गगन में
धूमहीन, करती सुवर्ण-वर्ण मेघों को ![4]

---

(१) मेघनाद वध, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १७६
(२) मेघनाद वध काव्य, सं० ब्र० वन्दोपाध्याय तथा स० दास पृष्ठ-६५
(३) वही, सं०ब्र०बं० स० दास पृ० ३६
(४) मेघनाद वध, द्वितीयावृत्ति पृ० २३८

गुणग्राही गुप्त जी बड़े कुशल अनुवादक थे। वे मूल काव्य की आत्मा को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए काव्यानुवाद करने में पारंगत थे। यही कारण है कि उनके द्वारा माइकेल के 'मेघनाद वध' का किया गया अनुवाद आदर्श स्वरूप है। वह शब्द की व्युत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए अनुवाद करने में पूर्ण सक्षम थे। इस परिप्रेक्ष्य में माइकेल के बँगला काव्य "मेघनाद वध" और गुप्त जी द्वारा किए गये उसके काव्यानुवाद के अंश परस्पर तुलना के लिए एक साथ प्रस्तुत हैं-

मेघनाद वध (माइकेल)- उत्तरिला विभीषण वृथा ए साधना
धीमान राघव दास आमि की प्रकारे-
ताहार विपक्ष काज करिब रक्षिते
अनुरोध ? उत्तरिला कातरे रावनि
हे पितृव्य तव वाक्य इच्छि मरि बारे
राघवेर दास तुम केमने ओ मुखे
आनिले ए कथा तात कहो ता दासेरे ![1]

मेघनाद वध (काव्यानुवाद)-उत्तर में बोला यों विभीषण कि-"धीमते,
व्यर्थ यह साधना है! मैं हूँ राघवेन्द्र का
दास, कैसे कार्य्य करूँ उनके विपक्ष में,
रक्षा करने को मैं तुम्हारे अनुरोध की?"
कातर मेघनाद फिर कहने लगा–
"काका मरने की आप इच्छा मुझे होती है
बातें ये तुम्हारी आज सुनकर, लज्जा से !
राघव के दास तुम? कैसे इस मुख से
बात निकली है यह? तात, कहो दास से।"[2]

---

(१) मेघनाद वध काव्य, सं० ब्रजेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय तथा रजनीकांत दास, पृ० १७३–१७४

(२) मेघनाद वध, द्वितीयावृत्ति, पृ० ३२३

उपर्युक्त काव्यांशों के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि गुप्त जी कृत हिन्दी काव्यानुवाद माइकेल कृत मेघनाद वध का आदर्श अक्षरशः अनुवाद है। 'अन्वर्थता' इसकी विशेषता है। इस शुद्ध अनुवाद को मूल के उद्धरणों से मिलान करने पर दोनों की भाव साम्यता प्रभावकारी है।

मैथिलीशरण गुप्त राम के अनन्य भक्त हैं। उनका राम को संबोधित करते हुए स्पष्ट कथन है -

मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।[1]

मैथिलीशरण जी ने मूल काव्य के छंदों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये हैं। कहीं-कहीं मूल के भावों को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए उन्होंने कथन में उलट फेर किया है तो कहीं दो एक पद अपनी ओर से जोड़ भी दिये हैं। यथा-

'भूल गये भोलानाथ कैसे उसे सहसा'

'भोलानाथ' मूल काव्य का न होने पर भी कवि की वर्णन शैली के प्रतिकूल नहीं है। यूँ ही मेघनाद के अस्त्रों के विषय में माइकेल का कथन है-

'पशुपति-त्रास अस्त्र पाशुपत सम।'

इसका अनुवाद होगा- **पशुपति-त्रास अस्त्र पाशुपत तुल्य है।**

परन्तु मैथिलीशरण जी ने अनुवाद इस प्रकार किया है-

'पाशुपत से भी घोर आसु गति अस्त्र है।'[2]

वरूण की पत्नी के लिये माइकेल ने 'वारूणी' (जो वरूण के कन्या के अर्थ में प्रयुक्त होना चाहिये) शब्द का प्रयोग किया है। गुप्त जी ने अपने अनुवाद में 'वारूणी' के स्थान पर 'वरूणानी' शब्द का प्रयोग किया है।[3] इसी प्रकार 'कार्तिकेय' के लिए मधुसूदन दत्त ने 'कृतिका कुल वल्लभ' शब्द का

(१) द्वापर-गुप्त, आरम्भण पंक्तियाँ
(२) मेघनाद वध - गुप्त, २८
(३) निवेदन, पृष्ठ १८,

प्रयोग किया है। वल्लभ शब्द प्रणयी अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतएव गुप्त जी ने 'कार्तिकेय' शब्द को ही अपने रूपांतर में स्वीकार किया है।

स्वच्छंदतावादी माइकेल ने शब्दों को मनोनुकूल तोड़ा-मरोड़ा तथा उन्हें नये अर्थों में प्रयुक्त किया है। गुप्त जी ने मूल काव्य के दोषों का परिहार कर अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इसीलिए उनके काव्यानुवाद की महत्ता बढ़ गई है।[1]

मैथिलीशरण जी ने निवेदन के रूप में प्रस्तुत अपनी भूमिका में मूल मेघनाद वध काव्य की विसंगतियों की ओर सुधी पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हुए उनकी सम्यक् समीक्षा और परीक्षा भी की है। उदाहरणार्थ-

मूल- **प्रतारित शेष अमि नारि न बूझते।**

शेष का प्रतारित विशेषण उपयुक्त नहीं है। प्रतारित का अर्थ है वंचित और कवि का अभिप्राय 'बनावटी क्रोध' से है। इसलिए कवि गुप्त ने अनुवाद इस प्रकार किया है-

"समझ सकी न कोप कृतिम मैं उसका।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त की ऊर्मिला उनकी निजी सृष्टि है, परन्तु उस पर माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद वध की नायिका प्रमिला का अमित प्रभाव है। प्रमिला में कोमलता, पतिपरायणता एवं वीरता का जो अद्भुत सामंजस्य है, वही कुलवधू ऊर्मिला की कोमलता तथा पातिव्रत के आत्म विसर्जन एवं वीरांगना के वीरत्व में है। साकेत की सुमित्रा का क्षत्राणी रूप भी प्रमिला से प्रभावित है।

साकेत के प्रत्येक सर्ग में गुप्त जी ने किसी न किसी महाकवि का स्तवन किया है। उनकी इस रचना-शैली पर माइकेल कृत मेघनाद वध की स्पष्ट छाप है। यह सुखद संयोग ही है कि मेघनाद वध के नवम सर्ग की भाँति साकेत के नवम सर्ग में भी करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। नवम

(१) निवेदन पृ० १६, (२) मेघनाद वध - गुप्त, पृ० - २२

सर्ग में छंदों के जिस वैविध्य एवं वैचित्र्य के दर्शन होते हैं तथा प्रबंधात्मकता में जो लड़खड़ाहट है- वह माइकेल से प्रभावित होने का ही परिणाम प्रतीत होती है।

मूल मेघनाद वध के तृतीय सर्ग में राक्षसराज रावण के पारिवारिक जीवन की जो सुखद झलक चित्रित हुई है, साकेत में भी परिवार की वैसी ही मनोरम झाँकी विद्यमान है। तृतीय सर्ग में ही प्रमिला अपने पति के दर्शनार्थ रामचन्द्र और उनकी वानरी सेना से घिरी लंका में प्रवेश करने के लिए जो वीरांगना का रूप धारण करती है, साकेत के द्वादश सर्ग में ऊर्मिला का वीरबाला रूप उससे पर्याप्त प्रभावित है।

माइकेल के मेघनाद का हृदय जिस प्रकार पाषाण सदृश कठोर और कुसुमवत् कोमल है, पंचवटी के लक्ष्मण की भी वही स्थिति है। मर्यादावादी कवि तुलसी ने **'मरम वचन सीता जब बोला...............'** कहकर मर्यादा की रक्षा कर ली है, जबकि 'पंचवटी' में मारीच वध प्रसंग के पूर्व ही देवर–भाभी के सम्बन्धों की जो पारिवारिक एवं मनोहारी झाँकी प्रस्तुत की गई है, उसके आगे पाप-पुण्य जनित संदेह का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। इसीलिए पंचवटी कार ने दोनों पर पुष्पवर्षा कराई है। यही स्थिति माइकेल मधुसूदन दत्त की है। उन्होंने सीता के मुख से उनकी उच्च प्रकृति के विपरीत कोई बात नहीं कहलाई है।

माइकेल ने राक्षसों को बड़ी-बड़ी सींगों, दाँतों और भयंकर रूप वाले न चित्रित कर, मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। हाँ, उनमें सामान्य मानव से कहीं अधिक शक्ति होती है। वे अत्यंत बलवान और युद्धप्रिय भी है। उन्होंने हनुमान, सुग्रीव आदि प्रमुख वानरों को भी मनुष्य कोटि में रखा है। मेघनाद वध की सबसे खटकने वाली बात यह है कि मधुसूदन दत्त ने राक्षस वर्ग का पक्ष लेते हुए राम और लक्ष्मण के चरित्र को गिराया है, उन्हें कापुरुष और नरहन्ता रूप में चित्रित किया है। ऐसा करना भारतीय जनमानस के लिये तिक्तिस्वरूप है। इसीलिए माइकेल को लोक-भर्त्सना का शिकार भी होना पड़ा।

साकेत के एकादश एवं द्वादश सर्ग में युद्ध का जैसा जीवंत चित्रण हुआ है, उसकी बहुत कुछ प्रेरणा मैथिलीशरण जी को माइकेल के मेघनाद वध के सातवें सर्ग से प्राप्त हुई थी। जिस प्रकार मेघनाद वध में वीर एवं करुण रस का प्राबल्य है, तदनंतर श्रृंगार का क्रम आता है, वैसी ही स्थिति साकेत की भी है। साकेत के प्रणयन का उद्देश्य ही रुदंती विरहिणी ऊर्मिला के विरह से दु:खी होकर उसकी उदात्त महिमा का गान करना है, महाकाव्य के नायक लक्ष्मण के ओज, तेज और वीरत्व की व्यंजना अनेक सर्गों के माध्यम से की गई है। मात्र प्रथम सर्ग नव दम्पत्ति के सुखद संयोग पर आधारित होने के कारण श्रृंगार रस प्रधान है।

मधुसूदन की प्रमिला निर्दोष कुलवधू गुरुजनों के प्रति श्रद्धा-भक्ति से आप्लावित एवं पातिव्रत धर्म पालन में अग्रगण्या थी, गुप्त जी की ऊर्मिला का चरित्र बिल्कुल प्रमिला से मेल खाता है। प्रमिला चाह कर भी सास के भय से मेघनाद के साथ यज्ञागार न जा सकी थी, ऊर्मिला भी भ्रातृ-प्रेम का आदर्श उपस्थित करने के लिए दृढ़ संकल्पी लक्ष्मण के कर्त्तव्य-पालन में वन जाकर बाधा नहीं बनना चाहती थी। 'उत्तर-रामचरित' और 'मेघनाद वध' में दण्डकारण्य-वास का जैसा गार्हस्थ्यपूर्ण चित्र अंकित किया गया है, हूबहू वैसी मनोरम झाँकी चित्रकूट वास के अन्तर्गत साकेत के अष्टम सर्ग में प्रस्तुत की गयी है।

गुप्त जी की पंचवटी में सीता और लक्ष्मण के पारस्परिक देवर-भाभी के सम्बन्धों का जो आदर्श रूप प्रस्तुत है, वह बाल्मीकीय रामायण तथा तुलसी के मानस से बढ़कर उदात्त एवं महान है। वाल्मीकि ने कपट मृग के बध के लिए राम के सहायतार्थ लक्ष्मण के न जाने पर सीता से जो कटूक्तियाँ व्यक्त कराईं, वे देवर-भाभी के पवित्र सम्बन्धों की छवि को मलिन करने वाली हैं।

मेघनाद वध के उपरांत मैथिलीशरण जी ने अपनी मौलिक काव्य रचनाओं में भाव पक्ष (कल्पनाशीलता तथा चरित्र-सृष्टि) के अतिरिक्त कलापक्ष के क्षेत्र में भी माइकेल के मेघनाद वध से प्रेरणा ग्रहण की है। गुप्त जी

माइकेल की संगीतमयी पदावली, चित्रोपम वर्णन, कल्पना-वैभव, नूतन अप्रस्तुत विधान, अखण्ड कथाप्रवाह, ओजस्विता, रसार्द्रता, छटा वर्णन, महच्चरित्र की अद्भूत-कल्पना एवं अतुकांत छंद सृष्टि जैसे गुणों से अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्होंने जहाँ हिन्दी जगत को बँगला का पहला चिरस्मरणीय काव्यानुवाद प्रस्तुत किया, वहीं अपने काव्य को उसके गुणों से युक्त करने का सफल प्रयत्न भी किया है।

विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने माइकेल मधुसूदन दत्त कृत 'मेघनाद वध' का सफल अनुवाद करते हुए मूल कृति की आत्मा के साथ उसके कलेवर को भी अक्षुष्ण बनाये रखा। उन्होंने मूल के अदम्य ओज, प्रबल प्रवाह, शब्द-प्रतीकों और छंदों का सारगर्भित रूपांतर किया है। निष्कर्षतः इनके रामकाव्यों पर माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाद वध' का व्यापक प्रभाव है।

पंचवटी

'साकेत' के रचना काल के मध्य ही मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'पंचवटी' की रचना की। चरित्र-प्रधान यह खण्डकाव्य अनुमानतः सन् १६२३ से १६२५ के मध्य लिखा गया। वस्तुतः कवि ने पंचवटी की रचना 'साकेत' के एक सर्ग के रूप में की थी, जिसे महाकाव्य की वस्तु-परिधि में समाहित न करके उसने इसे सन् १६२५ में स्वतंत्र काव्यकृति के रूप में प्रकाशित किया। आलोच्य खण्डकाव्य की कथावस्तु राम और लक्ष्मण के वनवास-काल के 'शूर्पणखा-नक्छेदन-प्रसंग' पर आधारित है। कवि गुप्त को इस कथावस्तु की मूल प्रेरणा तुलसी के रामचरितमानस से ही प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त पंचवटी का सम्पूर्ण विस्तार गुप्त जी की मानसिक उपज है जिसके लिए वे माइकेल मधुसूदन दत्त कृत बंगला कृति 'मेघनाद वध' से पर्याप्त रूप से प्रभावित हैं।

पंचवटी के कथानक की प्रस्तुति में प्रकृति की मनोरम पृष्ठभूमि ने प्रमुख भूमिका निभाई है। एकांत और उद्दीपनकारी वातावरण के प्रभाव स्वरूप लक्ष्मण के मन में जागृत सुकुमार भावनाओं जैसे दुर्बल क्षणों में उनका मनः चिंतन इस खण्डकाव्य की उल्लेखनीय मौलिकता है। तपस्पृही लक्ष्मण इस चरित्र-प्रधान खण्डकाव्य के नायक हैं। उनके महिमा-मंडित व्यक्तित्व के प्रति पाठक के मन में औत्सुक्य जगाते हुए कवि ने अपनी निष्ठा तथा देशभक्ति का परिचय दिया है। यथा :-

जाग रहा है कौन धनुर्धर, जबकि भुवन भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा बना दृष्टिगत होता है।[1]

गुप्त जी के सम्पूर्ण रामकाव्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने सभी स्थलों पर लक्ष्मण की चारित्रिक सृष्टि मानवीय धरातल पर की है। उनके लक्ष्मण अलौकिक या शेषावतार न होकर पराक्रमी, ब्रह्मचारी एवं कर्त्तव्य परायण व्यक्ति हैं। पंचवटी के लक्ष्मण के चरित्र निर्माण में कवि गुप्त के अपनी सारी शक्ति लगा दी है। गुप्त जी का लक्ष्मण के प्रति विशेष आकर्षण का प्रमुख कारण यह है कि लक्ष्मण की भाँति वे भी अपने भाइयों में वय-क्रम से तीसरे स्थान पर थे। यही कारण है कि कवि ने लक्ष्मण की चरित्रसृष्टि में विशेष रूचि ली है। **इसके लिए वे अपने प्रियकवि माइकेल मधुसूदन दत्त और उनके 'मेघनाद वध' जैसे युगांतरकारी एवं कालजयी काव्य से प्रभावित हैं।** लक्ष्मण का चरित्र 'मेघनाद वध' के नायक मेघनाद से विशेष प्रभावित है। इन दोनों ही काव्यों के नायकों का यदि स्वतंत्र रूप से तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह बात स्वतः सिद्ध हो जायगी। कथन की पुष्टि के लिए कुछेक स्थलों का उल्लेख समीचीन होगा।

लक्ष्मण का व्यक्तित्व विघ्नों और कष्टों को झेलने से कतराता नहीं, बल्कि उनसे जूझने के लिए सदैव तत्पर रहता है। वे भयानक से भयानक बाधाओं की उपस्थिति से चिंतित एवं विचलित नहीं होते, अपितु उन्हें सामान्य श्रेणी में ही लेते हैं। इस सम्बन्ध में ध्यातव्य हैं ये पंक्तियाँ -

> **इसी खेल को कहते हैं क्या विद्वज्जन जीवन-संग्राम?**
> **तो इसमें सुनाम कर लेना है कितना साधारण काम।**[1]

पंचवटी में प्रकृति-सौन्दर्य के अनेक मोहक एवं विराट् विम्ब उपलब्ध हैं, जिनमें कवि के प्रकृति के प्रति लगाव और सौंदर्य बोध का सहज परिचय मिलता है। प्रकृति की स्वच्छन्दता, संगति और मनोहरता ने मानवीय भावनाओं से सामंजस्य स्थापित करते हुए प्रसंगों की पूर्वपीठिका के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई है। ऐसे ही प्रकृति के उद्दीपनकारी वातावरण के मध्य एकाकी लक्ष्मण के भाव-प्रवण मन में सुकुमार भावनायें अँगड़ाइयाँ लेने लगती हैं।

---

(१) पंचवटी – २६ पृ० १६

ऊर्मिला की सुखद-स्मृति में वह खो जाते हैं। रात्रि के सन्नाटे में ऊर्मिला की सुखद स्मृति में निमग्न लक्ष्मण को चित्रित कर कवि गुप्त ने साकेत की नायिका (ऊर्मिला) के चरित्र का पूर्वाभास दिया है।

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से गुप्त जी के इस काव्य का विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि पंचवटी में प्रकृति के उद्दीपन एवं आलम्बन दोनों रूपों का मोहक चित्रण हुआ है। चाँदनी रात की सुन्दरता से सम्बन्धित निम्नांकित पंक्तियाँ प्रबुद्ध पाठकों को सदैव ही विशेष प्रिय रही हैं -

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोकों से।
मानो झूम रहे हैं तरु भी, मंद पवन के झोंकों से।[१]

गुप्त जी के काव्य में प्रकृति या तो पृष्ठभूमि का निर्माण करती हुई दिखाई देती है या उसका चित्रण संवेदनात्मक रूप में हुआ है। पंचवटी की उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों ने परिवेश का सुन्दर निर्माण किया है। आलोच्य काव्य का प्रकृति-वर्णन, सौन्दर्य-वर्णन और भाषा-शैली कलात्मक तथा मनोहारी हैं। सीता की उपस्थिति और उनके सौंदर्य का व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण परिवेश (प्रकृति) पर पड़ता प्रतीत होता है, मानो वह पुलकित हो जानकी की एक मुसकान पर न्योछावर होने को आतुर है। यथा -

हँसने लगे कुसुम कानन के देख चित्र-सा एक महान,
विकच उठीं कलियाँ डालों में निरख मैथिली की मुसकान।
कौन-कौन से फूल खिले हैं, उन्हें गिनाने लगा समीर,
एक-एक कर गुन-गुन करके, जुड़ आई भौरों की भीर।[२]

(१) पंचवटी-पृ०-५, पद १
(२) पंचवटी - पृ० २०, पद ३१

रामानुज ने भ्रातृ-प्रेम का आदर्श उपस्थित करने के उद्देश्य से अपने मधुमय एवं ऐश्वर्यमय जीवन को ठुकराकर या महत्वहीन मानते हुए जिस कर्त्तव्यपरायणता, धीरता, गम्भीरता और विचारशीलता का परिचय दिया, वही सुकृति 'पंचवटी' का प्राणतत्व है। गुप्त जी ने अन्य चरित्रों की सृष्टि वस्तुतः इसी मुख्य चरित्र में रंग भरने के उद्देश्य से की है। लक्ष्मण की चारित्रिक दृढ़ता से सम्बन्धित सीता की निम्नांकित उक्ति नायक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण 'चारित्रिक प्रमाणपत्र' है -

'नाथ, निहारो,
यह अवसर अनमोल नया;
देख तुम्हारे प्राणानुज का-
तप, सुरेन्द्र भी डोल गया !
माना, उनके निकट नहीं है
इन्द्रासन की कुछ गिनती,
किन्तु अप्सरा की भी क्यों ये
सुनते नहीं नम्र विनती ![१]

सीता की यह उक्ति जहाँ नायक लक्ष्मण के दृढ़ एवं उदात्त व्यक्तित्व की परिचायक है, वहीं भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों के अन्तर्गत प्रचलित देवर-भाभी के पवित्र एवं आदर्श सम्बन्धों को भी रेखांकित करती है।

आंतरिक द्वन्द्वों अनेकानेक संघर्ष-प्रधान परिस्थितियों और परिवारिक जीवन के चित्रण में गुप्त जी सिद्धहस्त हैं। पारिवारिक परिवेश और सम्बन्धों के आदर्श रूप को प्रस्तुत करने में उन्होंने तुलसी से बहुत कुछ प्रेरणा ली है।

'पंचवटी' को गुप्त जी के आरम्भिक कविता काल की समाप्ति तथा मध्य काल के आरम्भ का संधि-स्थल कहना उचित होगा। इस प्रकार गुप्त जी अपनी जिन कालजयी कृतियों के द्वारा जाने और माने जाते हैं, पंचवटी

---

(१) पंचवटी ८४, पृ० ४७

उनमें से एक है। प्रख्यात् रामकथा के लोकप्रसिद्ध आख्यान 'शूर्पणखा प्रसंग' को कवि गुप्त ने स्थानवाची नाम देकर साकेत का पूर्वाभास दिया था। आलोच्य खण्डकाव्य के कथा-विकास और प्रतिपादन शैली में कवि की मौलिकता का सहज ही ऑकलन किया जा सकता है। लोकप्रसिद्ध रामकथा के इस प्रसंग को गुप्त जी की लेखनी ने जो विश्वसनीयता, रोचकता, आकर्षण, मानवीय संवेदना, रसात्मकता एवं स्निग्ध माधुर्य प्रदान किया है, वह निश्चय ही पंचवटी की अपार लोकप्रियता के मूल में है। इस काव्य में श्रृंगार, हास्य और करुण जैसे रसों की योजना ने उसे सजीवता और जीवंतता प्रदान की है। परिवेश के चित्रण में कवि गुप्त ने प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में सफल प्रयोग किया है। इससे ऐसा लगता है जैसे रंगमंच पर प्रस्तुत किये जा रहे नाटक का यह कोई दृश्य हो जिसमें पात्र आकर अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। बीच-बीच में संवाद-योजना ने भी नाटकीयता की सृष्टि में विशेष भूमिका निभाई है।

रामकथा के इतिहास-प्रसिद्ध पात्रों की प्रस्तुति में कवि का आधुनिक दृष्टिकोण बराबर सजग रहा है। सभी चरित्र स्वाभाविक तथा मानवोचित हैं। राम का धीर और प्रशांत रूप भी पंचवटी में स्निग्धता एवं कोमलता से युक्त है। लक्ष्मण के ओजस्वी और तेजस्वी रूप में भी तरलता, मधुरता तथा प्रखरता है। सीता भारतीय परिवारों की आदर्श भाभी की भूमिका निभाती चित्रित हुई हैं। शूर्पणखा में राक्षसत्व है, पर साथ ही स्त्री-सुलभ मुग्ध भाव और वाग्वैदग्ध भी है। निम्न-वर्गीय पात्रों के प्रति सहानुभूति का भाव कवि पर पड़े गाँधीवादी प्रभाव का प्रमाण है। कवि सामाजिक मर्यादा के प्रति सजग है और इसी मर्यादा की नींव पर पंचवटी का काव्य-प्रासाद निर्मित हुआ है।

पंचवटी में गुप्त जी के जीवन तथा जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण की झलक बराबर उपलब्ध होती है। यथा –

जितने कष्ट-कंटकों में हैं, जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव गंध उन्हें उतना ही, यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।।[1]

(१) पंचवटी - २०, पृ० - १५

परम्परागत राम काव्यों में लक्ष्मण को उग्र रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। इसके विपरीत 'पंचवटी' में वे कर्त्तव्यनिष्ठ, पत्नीव्रती, भावुक, आत्मसंयमी, विनम्र और पुरुषार्थी रूप में चित्रित हुए हैं। इस काव्य में गुप्त जी ने मनुष्यत्व एवं देवत्व की विशुद्ध विवेचना करके अपनी मानवतावादी दृष्टि जिसके लिए बंगला कवि माइकेल 'मेघनाद वध' से जाने गये, की स्थापना की है। गुप्त जी मनुष्यत्व को देवत्व की जननी मानते हुए कहते हैं -

मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ।[१]

'पंचवटी' में गुप्त जी की काव्य-शक्ति का सर्वप्रथम परिचय मिलता है। इसे यदि कवि की प्रथम साहित्यिक एवं प्रौढ़ रचना कहा जाय तो अनुचित न होगा। पात्र परिकल्पना में मनोवैज्ञानिकता के साथ ही साथ 'पंचवटी' में रामकथा के मनोनुकूल प्रसंगों का चयन तथा नवीनउद्भावनाओं का उद्घाटन भी हुआ है। गुप्त जी के समस्त राम काव्यों के नायक उनके इष्टदेव राम नहीं बने, बल्कि उन्होंने अपनी भावधारा या विचारधारा के प्रतिनिधि पात्र लक्ष्मण को नायक बनाया है। लक्ष्मण से उनकी संगति बैठने के दो कारण रहे हैं। पहला तो यह कि उनके परिवार में सख्य-भाव की रामभक्ति थी। गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' का सैकड़ों बार पाठ करने के कारण गुप्त जी की राम से मैत्री स्थापित करने की हिम्मत न हुई। हाँ, इस क्षेत्र में वे लक्ष्मण के सन्निकट अवश्य पहुँच गये हैं। इस सम्बन्ध में उनके ही विचार जो कभी गाँधी जी को एक पत्र के रूप में प्रेषित किए गए थे, इस प्रकार हैं -

"सख्यभाव की उपासना में दीक्षित होते हुए भी 'मानस' के राम के समीप मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता है............ वह अभ्यस्त भय कभी भी नहीं छूटा और मुझे उन्हें प्रभु कहते ही बना.............. लक्ष्मण में सैनिक-भाव की प्रबलता रहते हुए भी लौकिकता यथेष्ट मात्रा में होने से मेरी उनके साथ सरलता से निभ जाती है।"[२]

---

(१) पंचवटी - १५, पृ० -१२

(२) मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ / डॉ० अग्रवाल, २४२

पंचवटी' पर न तो कवि का भक्त-मन हावी हो सका और न उसकी राष्ट्रीय भावना ही। वस्तुतः कवि ने गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर इसकी रचना की थी। उस काल में देश के स्वातंत्र्य के साथ ही साथ राष्ट्रीय चरित्र को ऊपर उठाने की आवश्यकता थी। लक्ष्मण गाँधी जी द्वारा निर्दिष्ट इसी आदर्श के मूर्तिमंत रूप हैं, तभी तो कवि ने सर्वत्र उनके प्रति अपनी सम्मानसूचक भावना व्यक्त की।[१]

'पंचवटी' रामभक्त कवि गुप्त की वैसी ही लोकप्रिय रचना है, जैसी 'भारत भारती', 'यशोधरा' और 'साकेत'। इस परम्परागत रामकथा प्रधान आख्यान में उन्होंने अनेक नवीन उद्भावनायें की हैं, जिनके फलस्वरूप काव्य कृति का आकर्षण तो बढ़ा ही है, साथ ही साथ उसके महत्व में भी वृद्धि हुई है। आलोच्य काव्य में कवि की प्रतिपादन शैली नितांत निजी अर्थात उसकी अपनी है। गुप्त ने इस आख्यान को जो रोचकता, विश्वसनीयता और आकर्षण प्रदान किया, वही उनकी मौलिकता है। काव्य में आये करुण, मधुर और हास्य-विनोद जैसे तत्वों ने कृति को सरसता एवं स्निग्धता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटकीय परिवर्तनों द्वारा पाठक के मानस को बरबस अपनी ओर आकृष्ट किया है।

'पंचवटी' के पात्रों की चारित्रिक सृष्टि में परम्परा और प्रयोग दोनों का यथोचित सामंजस्य है। विशेषतः लक्ष्मण के व्यक्तित्व के साथ ही साथ सीता के आर्या-रूप एवं शूर्पणखा के नारी सुलभ मुग्ध-भाव और वाक्-चातुर्य में कवि की मौलिकता स्पष्टतः दिखाई देती है। कामासक्त शूर्पणखा को पहले लक्ष्मण के प्रति आकृष्ट दिखाकर गुप्त जी परम्परागत आख्यान में जहाँ लीक से हटे हैं, वहीं उन्होंने नारी मनोविज्ञान के अनुसार भी अच्छी संगति बैठायी है। नारी पहले उस पुरुष की ओर आकृष्ट होती है जो अविवाहित अथवा 'पत्नीरहित' होता है। वह 'सौत' बनने की अपेक्षा 'प्रेम' पर एकाधिकार चाहती है। आत्म-संयम द्वारा निद्रा एवं काम को वशीभूत करने से भी लक्ष्मण की तेजस्विता की ओर शूर्पणखा का आकर्षित होना स्वाभाविक है। लक्ष्मण द्वारा

(१) देखिये पंचवटी, पृ० १५, छं०सं० २०

उसके प्रणय-निवेदन को प्रत्येक बार ठुकराने पर संकोची नारी मन के अनुसार उन पर उग्र' होने का दोषारोपण कर काम-प्रगल्भा शूर्पणखा का राम की ओर उन्मुख होना पूर्णतया स्वाभाविक है। नारी की प्रकृति लता के समान होती है, उपयुक्त अवलम्बन के अभाव में वह किसी का भी आधार ग्रहण कर सकती है। हताश नारी निरुपाय होने पर अत्यधिक भयंकर रूप भी ग्रहण कर लेती है। सीता और लक्ष्मण के पारस्परिक संवादों में देवर-भाभी के पवित्र सम्बन्धों की मोहक झलक पाठक को नवीन स्फूर्ति प्रदान करती है, साथ ही उसके मन में दोनों के प्रति अप्रतिम श्रृद्धाभाव भी जागृत करती है।

'पंचवटी' के संवाद सहज-स्वाभाविक, सुसम्प्रेषणीय प्रभावोत्पादक एवं लावण्यमयी हैं। खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में 'पंचवटी' की भाषा का अपना महत्व है। भाषा की प्रांजलता और लालित्य 'पंचवटी' को खड़ीबोली के आरम्भिक गौरव-ग्रंथों में समुचित स्थान दिलाते हैं। विवेच्य प्रबंधकाव्य कोमल भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला है। इसीलिए इस काव्य से कवि को विशेष लोकप्रियता भी प्राप्त हुई।

'पंचवटी' में भाव-व्यंजना के साथ ही साथ वस्तु-व्यंजना में भी कवि ने अपने काव्य-लाघव का अच्छा परिचय दिया है। रूप, मुद्राओं, मानवीय अवस्थाओं एवं कार्य-व्यापारों के चित्रण में कवि की आत्मा विशेष रमी है। 'पंचवटी' में शूर्पणखा के रूप-वर्णन से सम्बन्धित निम्नांकित पंक्तियाँ इस विन्दु पर ध्यातव्य हैं -

'चकाचौंध-सी लगी देखकर प्रखर ज्योति की वह ज्वाला,
निस्संकोच खड़ी थी सम्मुख एक हास्यबदनी बाला।
रत्नाभरण भरे अंगों में ऐसे सुन्दर लगते थे–
ज्यों प्रफुल्ल बल्ली पर सौ-सौ जुगनू जगमग करते थे।'[1]

---

(१) देखिये पंचवटी पृ० ३१, पू० २०

सन् १९२५ में प्रकाशित पंचवटी के अब तक पचहत्तर से भी अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह खण्डकाव्य होते हुए भी सर्गबद्ध नहीं है। पंचवटी में न तो द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता का बोझिलपन है और न आदर्शवाद की स्थापना का प्रबल आग्रह। वास्तव में श्री गुप्त ने इस काव्य की रचना छायावादी युग में की थी। इसी के परिणामस्वरूप कृति पंचवटी की भाषा और उसका शिल्प पूर्णतः छायावाद से प्रभावित है।

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया 'पंचवटी' प्रबंधकाव्य अनेक महत्वपूर्ण विशेषताओं के कारण सदैव ही काव्य रसिकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके कथा-विन्यास, वस्तु-वर्णन और पात्रों की चरित्र-सृष्टि में कवि की मौलिकता रसात्मकता एवं रोचकता का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य है। उदार नारी-भावना के लिए विख्यात गुप्त जी इस काव्य में युवक और युवती के हृदयस्थ मनोभावों पर बड़ी चतुराई से अर्गला लगाने में सफल हुए हैं। ऐसा करने में उन्होंने मनोवैज्ञानिकता का बराबर आधार लिया है। विवेच्य काव्य में विशुद्ध खड़ी बोली के लालित्य एवं माधुर्य का सुन्दर एवं सुखद सामंजस्य है। भले ही पंचवटी का प्रकाशन १९२५ में और 'मेघनाद वध' का प्रकाशन १९२७ में हुआ, पर सीता-लक्ष्मण तथा लक्ष्मण-शूर्पणखा के अत्यंत प्रभावशाली संवादों के लिए गुप्त जी 'मेघनाद वध' से प्रभावित हैं। यथा-

शूर्पणखा - **समझो मुझे अतिथि ही अपना, कुछ आतिथ्य मिलेगा क्या?**[1]

लक्ष्मण - **तुम अनुपम ऐश्वर्यवती हो, एक अकिंचन जन हूँ मैं।**
क्या आतिथ्य करूँ, लज्जित हूँ, वन-वासी, निर्धन हूँ मैं।[2]

भारतवर्ष चरित्र-प्रधान महापुरुषों का देश है। इसीलिये यहाँ अनुकरणीय चरित्र-प्रधान साहित्य की सर्जना होती आई है। पंचवटी में चरित्र को सर्वोपरि मानते हुए गाँधी जी की प्रेरणा से गुप्त जी ने लक्ष्मण जैसे आदर्शवादी चरित्र

---

(१) पंचवटी – ४३, पृ०–२६
(२) पंचवटी – ४४, पृ०–२७

को काव्य का आलम्बन बनाया है। सौमित्र का अजेय व्यक्तित्व **'नयन नारि सर'** से बिंधता नहीं है। परतन्त्रता के उस काल में गाँधी जी युवा देशवासियों की चारित्रिक दृढ़ता लक्ष्मण जैसी चाहते थे जिससे कि वे सभी आत्महित एवं देशहित में किन्ही प्रलोभनों एवं नारी आकर्षणों से नितांत अप्रभावित रहें।

उक्त उद्देश्य से कवि गुप्त को इस प्रबंधकाव्य में लक्ष्मण का साधक तथा तपस्वी या योगी रूप रास आया क्योंकि दासता के उस युग में देश को ऐसे ही संकल्पशील, दृढ़व्रती, त्यागी एवं निष्ठावान राष्ट्र-भक्तों की आवश्यकता थी। इस खण्डकाव्य का शुभारम्भ परिवेश-प्रधान शैली में करते हुए गुप्त जी ने पाठक के मन को विरक्ति, व्रतशीलता तथा निष्ठा के संस्कारों से भरने का प्रयास किया है। यथा -

पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीक मना।[१]
किस व्रत में है व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किये,
राजभोग्य के योग्य विपिन में
बैठा आज विराग लिये।[२]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है–

"या निशा सर्वभूतानां, तस्यामि जागर्ति संयमी।"

लक्ष्मण ऐसे ही संयमी एवं जितेन्द्रिय हैं। आकर्षण सदैव असाधारणता तथा त्याग के प्रति होता है। विविध प्रकार के प्रलोभन और शोभन लक्ष्मण के तपस्पृही रूप को विचलित करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं किन्तु वह इनसे सर्वथा अप्रभावित रहते हैं। अंततोगत्वा इतिहास में ऐसा ही व्यक्तित्व पुरुष

(१) पंचवटी – २/६
(२) पंचवटी – ३/६

और महापुरुष कहलाता हैं। लक्ष्मण की तपस्चर्या पर मुग्ध होकर लंकापति रावण की भगिनी शूर्पणखा मंत्रप्ररित सी उनके पास आकर प्रणय निवेदन करती हैं -

शूरवीर होकर अबला को देख सुभग, तुम चकित हुए;
संसृति की स्वाभाविकता पर चंचल होकर थकित हुए। [1]
प्रथम बोलना पड़ा मुझे ही पूछी तुमने बात नहीं।
इससे पुरुषों की निर्ममता होती क्या प्रतिभास नहीं।।..... [2]
अपना ही कुलशील प्रेम में पड़कर नहीं देखतीं हम।
प्रेम-पात्र का क्या देखेंगीं, प्रिय हैं जिसे लेखती हम।। [3]

मैथिलीशरण गुप्त ने प्राचीन भाव- सम्पदा को युग सापेक्ष रूप देकर तथा उसका सम्यक् सजाव-श्रृंगार करके पंचवटी के माध्यम से भावी हिन्दी काव्य–प्रासाद का स्वरूप निर्धारित किया है। साकेत के कुछ सर्गों की रचना के अनन्तर ही कवि गुप्त का ध्यान अनायास पंचवटी की ओर मुड़ गया था किन्तु दोनों ही काव्यों के विचार और भाव-संपदा में पर्याप्त समता है। कथन की पुष्टि हेतु दोनों काव्यों के कला विषयक अंश उद्धृत करना असंगत न होगा -

साकेत – **जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।** [4]

पंचवटी – **एक अपूर्व चरित लेकर जो**
उसको पूर्ण बनाते हैं,
वे ही आत्मनिष्ठ जन जग में,
परम प्रतिष्ठा पाते हैं। [5]

पंचवटी के सृजन काल की पृष्ठभूमि में गाँधी जी द्वारा संचालित अहिंसात्मक आन्दोलन थे, जिनका प्रभाव काव्यकृति पर भी पड़ा। गाँधी जी

---

(१) पंचवटी - ३५, पृ०-२२ (२) पंचवटी - ३६, पृ० २३
(३) पंचवटी - ६१, पृ० - ३५ (४) साकेत - १/३७
(५) पंचवटी - १००, पृ० - ५५

सच्चरित्रता के पक्षधर थे, इसीलिए गुप्त जी के पात्रों में चारित्रिक दृढ़ता की प्रधानता है। पंचवटी के लक्ष्मण आदर्श स्वरूप हैं। इसी प्रकार सामाजिक आन्दोलनों ने गुप्त जी के नारी पात्रों की चरित्र सृष्टि में भी युगांतर उपस्थित किया है। पंचवटी की सीता तो इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। वह स्वावलम्बन और कर्मठता के भाव से आप्लावित हैं। उधर पंचवटी के राम अत्यंत गम्भीर, विशाल हृदय वाले एवं आकाश की भाँति प्रशांत हैं। प्रणाम करते हुए लक्ष्मण को वे अपनी भुजाओं में वैसे ही समेट लेते हैं, जैसे बादल चन्द्रमा को अपने आलिगन पाश में बाँध लें।

मैथिलीशरण गुप्त को प्रकृति-वर्णन की जो परम्परा पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त थी वह रीति युगीन थी। उसमें इसीलिए प्रकृति उद्दीपन रूप में चित्रित है जबकि गुप्त जी की रचनाओं में प्रकृति निखरी एवं मानवीय भावनाओं से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करती अवतरित हुई है। भावी घटनाओं की पृष्ठभूमि निर्माण करने का कार्य भी पंचवटी में प्रकृति ने ही किया है। पंचवटी की प्रकृति के कितने ही चित्र गत्यात्मक और लुभावने हैं। [१]

प्रकृति-वर्णन से सम्बन्धित गुप्त जी के गत्यात्मक चित्र लौकिक भाव-भूमि पर आधारित हैं। वैष्णव भक्त होकर भी उन्होंने पंचवटी के पात्रों की सृष्टि मानवीय भावभूमि पर की है ताकि वे विश्वसनीय एवं व्यावहारिक प्रतीत हों। वे जीवन की हर विसंगति, विषमता या विद्रूपता का सामना करके उसे निर्मूल और निराकृत करते हैं। संघर्ष के क्षणों में भी गुप्त जी के पात्रों में नैराश्य नहीं आता वरन् वे आत्मविश्वास से आप्लावित रहते हैं। व्यक्तित्व की यह दृढ़ता और उदात्तता पंचवटी के राम और लक्ष्मण के आचरण याकि करनी तथा कथनी में बराबर देखी जा सकती है। यथा -

जब तक संकट आप न आवें, तब तक उनसे डर मानें
जब वे आ जावें तब उनसे डटकर शूर समर ठाने। [२]

---

(१) पंचवटी– ६८ पृ० ३६

(२) पंचवटी– १२१, पृ० ६५

मेरे मत में तो विपदाएं हैं प्राकृतिक परीक्षायें।
उनसे वही डरें कच्ची हों जिनकी शिक्षा दीक्षायें। [1]

इस प्रकार पंचवटी प्रबंधकाव्य पुरुषार्थ, आत्म-त्याग और आत्मगौरव का संदेश देता है। पात्रों के व्यक्तित्व में सहिष्णुता का भाव उसकी विशिष्टताओं में चारचाँद लगाता है। सहन-शक्ति सफलता का मूलाधार होती है, उसी से व्यक्तित्व निखरता, सँवरता तथा अपनी अलग पहचान बनाता है। इस प्रबन्धकाव्य के नायक लक्ष्मण के व्यक्तित्व में ये सभी गुण पूर्णतः विद्यमान हैं। ध्यातव्य यह भी है कि पंचवटी और साकेत के अष्टम सर्ग का परिवेश काफी कुछ एक जैसा है।

पंचवटी प्रबंधकाव्य में मैथिलीशरण जी कवि, नाटककार और कथाकार के रूप में एक साथ दिखाई देते हैं। इस काव्य में संलाप शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। सभी वार्तालाप सरल एवं सरस हैं। इस परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मण और शूर्पणखा के दीर्घ संलाप उल्लेखनीय हैं। काव्य कृति में कवि गुप्त के जीवन दर्शन तथा जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक उपलब्ध होती है।

पंचवटी में कवि ने उपमान योजना का भी अच्छा निर्वाह किया है। रूप-वर्णन में तो उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का चयन देखते ही बनता है। [2]

कटि के नीचे चिकुर-जाल में उलझ रहा था बाँया हाथ,
खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौंरों के साथ।
दाँया हाथ लिये था सुरभित चित्र-विचित्र-सुमन-माला,
टाँगा धनुष कि कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला! [3]

दृश्य-चित्रण और कथोपकथन की प्रस्तुति में भी गुप्त जी पूर्ण सफल रहे। इस कार्य में नाटकीयता ने उनका भरपूर सहयोग किया है। सरलता और सहजता ने पंचवटी काव्य में जहाँ चार-चाँद लगाये हैं, तो गुप्त जी की तुकबंदी

(१) पंचवटी - १२०, पृ० ६५
(२) दे० पंचवटी ३१, पृ० २०
(३) पंचवटी - ३३, पृ० २१

ने कुछ बेतुके, दुरूह एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करके पाठक के मानस में तिक्ति भी उत्पन्न की है।

वर्जन किया किन्तु लक्ष्मण की
अधरस्थिता तर्जनी ने।
बोले वे - "बस, मौन कि मेरे
लिए हो चुकी मान्या तुम,
यों अनुरक्ता हुई आर्य्य पर
जब अन्यान्य वदान्या तुम।।"

उपर्युक्त पंक्तियों में अधरस्थिता, मान्या एवं वदान्या अप्रचलित शब्दों का प्रयोग असहज एवं दुरूह है।

मैथिलीशरण खड़ी-बोली के कवि हैं। उनकी रचनाओं में आकर ही खड़ीबोली पहली बार परिष्कृत रूप में प्रस्तुत हुई है। पंचवटी की भाषा साकेत में प्रयुक्त भाषा की तुलना में कहीं अधिक परिमार्जित, परिष्कृत एवं प्रवाहमयी है। गुप्त जी के सभी काव्य प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों के लिए विख्यात हैं। पंचवटी में भी ये तीनों गुण सहज रूप में विद्यमान हैं। अनुप्रास, मानवीकरण, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा ध्वन्यार्थ व्यंजक जैसे अलंकारों की नैसर्गिक छटा चतुर्दिक विकीर्ण है। गत्यात्मक बिम्बों की भरमार से भी कृति के साहित्यिक महत्व में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस प्रकार पंचवटी सुंदर, स्वाभाविक एवं जीवंत चित्रों का मनोहारी 'एलबम' है। निर्मल हास-परिहास से यह पारिवारिक काव्य राममय, आदर्शमय तथा अनुरंजनकारी बन गया है। तुलसी-वाङ्मय में 'विनयपत्रिका', प्रसाद-काव्य में 'आँसू' को जो गौरव-गंध प्राप्त है, मैथिलीकरण गुप्त के कविता-लोक में वही सौभाग्य 'पंचवटी' को मिला है।

लीला

'लीला' कवि गुप्त का एक अन्य रामकथा प्रधान काव्य 'साकेत-सृजन' के मध्य ही १६१८-१६ में प्रारम्भ हुआ था। इसी वर्ष (१६१६) में इसके तीन अंश 'सरस्वती' में भी प्रकाशित हुए थे। किन्तु नाट्य-शैली-प्रधान इस काव्य का प्रकाशन सन् १६६० में सम्भव हो सका।

राम की बाल्यावस्था से लेकर उनके विवाह तक की प्रमुख घटनाओं को आधार बनाकर कवि ने इस काव्य की रचना की है। इस पद्यबद्ध संवाद-प्रधान गीतिनाट्य में कुल नौ दृश्य हैं। गुप्त जी 'लीला' गीतिनाट्य से पूर्व 'पृथ्वीपुत्र' नामक गीतिकाव्य की रचना करने में सफलता प्राप्त कर चुके थे। इसीलिए उन्होंने राम लीलाओं को आधार बनाकर इस-दूसरे गीतिनाट्य की रचना की।

सम्पन्न एवं संभ्रान्त घराने में उत्पन्न हुए मैथिलीशरण के यहां प्रत्येक वर्ष रामलीला का मंचन होता था। इस रामलीला से ही प्रभावित एवं प्रेरित होकर उन्होंने गज़ल की तर्ज पर अनेक छन्दों की रचना भी की। फिर कुछ समय बाद उन्होंने 'लीला' गीतिनाट्य की रचना की।

ये गीतिनाट्य पारसीशैली के नाटकों के कहीं अधिक सन्निकट है। इसके महत्वपूर्ण होने के दो प्रमुख कारण हैं- रामकथा की प्रधानता होने से कवि की राम-भक्ति का परिचय प्राप्त होना तथा गुप्त जी की राष्ट्रीय-भावना का व्यक्त होना।

इस प्रकार लोकनाट्य के बहुप्रचलित रूप 'रामलीला' से प्रेरणा लेकर गुप्त जी ने 'लीला' नामक गीतिनाट्य' की सृष्टि की। लोकरंजन और लोकमंगल के साथ-साथ इस कृति के माध्यम से उन्होंने अपनी राम-भक्ति भी प्रदर्शित की है। इसमें कुल नौ दृश्य हैं। 'अंक' शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। 'एकांकी' के तत्वों का सम्यक् निर्वाह न होने से इसे एकांकी नहीं कहा जा सकता। स्वयं गुप्त जी ने इसे 'गीतिनाट्य' माना है। सम्पूर्ण काव्य-रूपक में पात्रों तथा रंगमंचीय व्यवस्था को ध्यान में रखकर दिए गए अधिकाधिक रंग-संकेत (रंग-निर्देश) इसके मंचन-उद्देश्य को स्वतः व्यंजित करते हैं।

'लीला' की दृश्य-योजना पर रामलीला के अतिरिक्त पारसी रंगमंच का भी प्रभाव है। प्रथम दृश्य में पारसी-नाटकों की भाँति चमत्कार प्रधान 'फणीन्द्रफणाश्रित रत्न-सिंहासन पर आसीन पृथ्वी देवी द्वारा गीत गाकर ईश्वर का 'राम-रूप' में अवतार, उनकी भक्तवत्सलता तथा कवि की उदात्त राष्ट्रीय भावना व्यक्त हुई है। द्वितीय दृश्य में राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं उनके 'धीर' और 'गम्भीर' मित्रों की वार्ता द्वारा मृगया के मिस बालकों के पारस्परिक हास-परिहास द्वारा रोचकता (हास्य) की सृष्टि जन (दर्शक) रूचि को ध्यान में रखकर की गई है। विश्वामित्र के आगमन, उनके स्वभाव तथा प्रभाव के बहाने कवि ने पुनः अपनी राष्ट्रीय भावना मुखरित की है। तृतीय दृश्य में विश्वामित्र राक्षसों के अत्याचारों का उल्लेख करते हुए उनके विनाशार्थ राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण की याचना करते हैं। राम के स्वगत कथन एवं लक्ष्मण से व्यक्त विचार उनके अवतार के उद्देश्य को व्यंजित करते हैं। अपने को विश्वामित्र को सौंपने में पिता को विचलित होता देख राम उन्हें समझाते हैं।

चतुर्थ दृश्य में दशरथ की भाँति ही माँ कौशल्या की उमड़ती ममता और अधीरता के शमन हेतु सुमित्रा की अवतारणा भारतीय नारी के गौरवशाली चरित्र के अनुकूल है। यथा–

देकर निज सर्वस्व सार-संसार में,
रत रहतीं हैं हमीं लोक-उपकार में।
त्याग, त्याग बस, त्याग हमारा धर्म है,
* * *
जीजी, करना जिसे लोक-हित-कार्य है,
उसे कठोराघात सहन अनिवार्य्य है।[1]

पंचम दृश्य में लंका के 'कराल' और 'अराल' राक्षसों के पारस्परिक संवादों के माध्यम से भारत की उदारता, सुन्दरता एवं महानता, हिमालय, पारस्परिक सौहार्द आदि- का चित्रणकर परतन्त्रता के उस युग में भी हृदय में उमड़ते स्वदेशानुराग का सम्पूर्ण दृश्य में परिचय उपलब्ध है :-

वह उच्च हिमालय भव्य भाल,
देखा है क्या तूने कराल ?
इस भू पर करने को निवास,
रहते हैं सुर भी साभिलाष-
अवतार भूमि है यह प्रसिद्ध........।[2]

'कराल' के जाने पर 'अराल' छिपकर ताड़का-वध का दृश्य देखता है।

षष्ठ दृश्य में भरत-शत्रुघ्न, धीर-गम्भीर और 'वीर' की परस्पर वार्त्ता से जनकपुर का धनुष-यज्ञ, दशरथ को आमंत्रण, अयोध्या के दूतों द्वारा विश्वामित्र को इसकी सूचना, ताड़का-संहार का समाचार, जनक द्वारा विश्वामित्र को भी निमंत्रण भेजने पर उनके राम-लक्ष्मण सहित जनकपुर प्रस्थान की सूचना देकर गीतिनाट्य की कथावस्तु का पूर्वापर सम्बन्ध जोड़कर उसे संक्षिप्त रूप दिया गया है। कालान्तर में अनावश्यक कथा को समेटने तथा उसके स्थलों को जोड़ने के लिए 'साकेत' में गुप्त जी ने इसी कौशल से काम लिया है, कभी व्यवसायी से प्राप्त जानकारी के अनुसार तो कभी हनुमान से प्राप्त समाचार के आधार पर।[3]

(१) लीला पृष्ठ ३२-३३ (२) लीला-पृष्ठ ४५, ५०-५२ (३) देखिए साकेत का एकादश सर्ग

'रामलीला' में धनुष-यज्ञ का प्रसंग लोक में सर्वाधिक रुचिकर एवं प्रचलित है। वस्तुतः यह प्रकरण ही लोक-जीवन में 'रामलीला' का पर्याय बन गया है। गुप्त जी को राम-भक्ति के अन्तर्गत रसिकोपासना विरासत में प्राप्त थी। रामकथा के अत्यन्त सुकुमार-प्रेम और सौंदर्य प्रधान-पक्ष की ओर इसीलिए वे संस्कारवश आकर्षित हुए। इस प्रकार 'लीला' की रचना वस्तुतः सीता-राम एवं ऊर्मिला-लक्ष्मण के विवाह-चित्रण के लिए हुई। आलोच्य काव्य-रूपक का सप्तम दृश्य-पुष्पवाटिका प्रकरण-अत्यन्त रुचिकर और मोहक है। चूँकि गुप्त जी ने राम-सीता के साथ ही साथ लक्ष्मण-ऊर्मिला के प्रेम और विवाह को भी चित्रित किया है, इसलिए उन्होंने अपने पद्य–नाटक का नाम 'रामलीला' न रखकर मात्र 'लीला' रखा है। इस दृश्य में कवि ने मनुष्यत्व को देवत्व के समकक्ष माना है :–

ऊर्मिला - **सखि, देवत्व सभी बातों में**
क्या सबसे उत्तम है ?

सुलक्षणा - ***ठीक नही कह सकती हूँ मैं,***
मनुष्यत्व क्या कम है ![1]

हृदयगत भावों को स्पष्ट करने हेतु पुष्पवाटिका-प्रसंग में स्वगत कथनों का प्रयोग और एक ही दृश्य में कुछ दूर खड़े राम–लक्ष्मण एवं सीता-ऊर्मिला तथा सखियों के संवाद[2] रंगमंच की सीमाओं को देखते हुए अस्वाभाविक एवं अव्यावहारिक हैं, जबकि प्रेम के उदय होने पर गीत-योजना सर्वथा औचित्यपूर्ण है।

अष्टम दृश्य में दो निर्बल तथा डरपोक राजाओं के माध्यम से शिव-धनुष की गुरुता-कठोरता आदि के उल्लेख के साथ ही हास्य रस का पुट दिया गया है। इस दृश्य में राम के ईश्वर का अवतार होने के संकेत भी विद्यमान हैं,[3] तो दृश्य के अन्तिम भाग में परशुराम को इस प्रकार की सूचना देने के लिए 'दूसरा राजा' के प्रस्थान द्वारा गुप्त जी ने आगे की कथा-परशुराम के आगमन- की संगति बैठायी है।

(१) लीला पृ-६६, (२) देखिए-लीला, पृष्ठ ७८, ८६ तक, (३) देखिए लीला-पृ० १००,

'लीला' गीतिनाट्य का नवम दृश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पात्रों के संवादों में तुलसी कृत 'मानस' की अनुगूँज सर्वत्र व्याप्त है।[1] मुनि विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण के धनुषयज्ञ-शाला पहुँचने पर राजा जनक उनके पुरुषानुरूप सौंदर्य से अभिभूत होते हैं। वे विश्वामित्र से शिव-चाप की गुरुता और कठोरता के साथ ही 'वीर-विहीन मही' के होने का उल्लेख करते हुए अपनी प्रतिज्ञा पर खेद व्यक्त करते हैं। इस पर लक्ष्मण क्षुब्ध हो उठते हैं। अंततः विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम धनुष को खण्डित करते हैं। नेपथ्य में ऊर्मिला सीता से उसके टूटने पर प्रसन्नता व्यक्त करती है। यहीं लक्ष्मण का पूर्वानुराग भी व्यक्त होता है। जनक मुनि विश्वामित्र से सीता के साथ ही अपनी अन्य कन्याओं का राजा दशरथ के पुत्रों से विवाह का विचार प्रकट करते हैं।[2] इसी समय परशुराम का आगमन होने पर उनका लक्ष्मण से वाक्-युद्ध होता है। अंततः राम के अवतारी होने, न होने का संशय दूर करने के निमित्त परशुराम अपने धनुष पर राम से शर-संधान करने को कहते हैं। उनके ऐसा कर देने पर परशुराम पूर्ण आश्वस्त हो तीर्थाटन के लिए सन्नद्ध होते हैं। उधर मंगल गीत गाती हुई सखियाँ सीता के साथ यज्ञ-स्थल में आती हैं। यहीं पर इस पद्य-नाटक का समापन हो जाता है।

वैष्णव भक्तों को रामलीला अथवा कृष्ण की रासलीला सदैव विशेष प्रिय रही है। कितने ही भक्तों को तो इन्हीं से भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश की प्रेरणा मिली है। 'आनन्द रघुनन्दन', 'राम-स्वयंवर' तथा भारतेन्दु-प्रणीत 'रामलीला' की रचना जिस प्रकार मंचन के उद्देश्य से हुई थी, वैसे ही गुप्त जी ने 'लीला' गीतिनाट्य का प्रणयन भी रंगमंचीय उद्देश्य से (रामलीला की लोकप्रचलित परम्परा से प्रभावित होकर) की थी। काव्य-लालित्य या साहित्यिक दृष्टि से 'लीला' गुप्त जी की सामान्य सृष्टि है, किन्तु नवीन उद्भावनाओं के विचार से इसका ऐतिहासिक महत्व है। विवेच्य कृति 'साकेत' महाकाव्य तथा उसकी नायिका ऊर्मिला के चरित्र की पूर्वपीठिका है। 'ऊर्मिला' खण्डकाव्य

(१) दे०-वही, पृष्ठ १०२-१०४ तक

(२) दे० लीला, पृष्ठ १०६

(१६०६-१६१०) को अधूरा छोड़ गुप्त जी 'लीला'-सृजन की ओर उन्मुख हुए थे। इस प्रकार हम इसे 'साकेत' का 'पूर्वाभ्यास' भी कह कसते हैं। वस्तुतः लीला की ऊर्मिला का 'इन्लार्ज्ड' अथवा परिवर्द्धित रूप ही 'साकेत' की ऊर्मिला है। गीतिनाट्य के सप्तम दृश्य (पुष्पवाटिका) में सीता के साथ ही ऊर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति की अवतारणा हिन्दी रामकाव्य में प्रथम प्रस्तुति ही कही जानी चाहिए। 'साकेत' का आरम्भ ऊर्मिला-लक्ष्मण के नव दाम्पत्य-जीवन से करने के कारण रामकथा के इस मधुर प्रसंग को कवि ने स्वतंत्र कृति का विषय बनाया था। कालान्तर में 'साकेत' के दशम सर्ग में इस सरस प्रसंग को प्रस्तुत कर गुप्त जी 'लीला' के प्रकाशन का मोह संवरण कर[1] गए थे। इसीलिए इसके प्रकाशन में बयालीस-तैंतालीस वर्षों का विलम्ब हुआ।[2] इस प्रकार आलोच्य कृति कवि के अभ्यास काल की सृष्टि है। 'लीला' में नाट्कीय कथावस्तु का स्वाभाविक प्रवाह बाधित है। संवाद-योजना तथा दृश्य-विन्यास दोषपूर्ण हैं। वैसे पद्य-शैली सजीव और प्रवाहमयी है।

(१) दे०–लीला का निवेदन, द्वितीय अनुच्छेद।

(२) दे० वही, निवेदन प्रभम अनुच्छेद।

प्रदक्षिणा

'प्रदक्षिणा' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है– श्रद्धा-भक्ति के भाव से किसी देवमूर्ति के चारों ओर इस प्रकार से घूमना कि दाहिना अंग निरंतर उसी की ओर रहे या पड़े। इसे परिक्रमा या फेरी करना भी कहते हैं।

'साकेत' की समाप्ति पर रामभक्त कवि ने तुलसी की भाँति रामकथा की पुनर्परिक्रमा नहीं की थी। मानस के उत्तरकाण्ड में राम के राज्याभिषेक के अनंतर एक बार फिर तुलसी ने रामकथा की परिक्रमा अत्यंत संक्षिप्त रूप में की है; पर गुप्त जी वैसा नहीं कर पाए। साकेत को पूर्ण करने के पश्चात् लगभग दो दशकों तक वह अनेकानेक सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में यूँ उलझे रहे कि जैसे उनके पास रामकथा की ओर ध्यान देने हेतु अवकाश ही न हो।

सन् १९५० में प्रकाशित 'प्रदक्षिणा' गुप्त जी की रामकथा विषयक अंतिम कृति है। यह रचना स्वर्गीया माँ काशीबाई को श्रद्धांजलि रूप में समर्पित है। अपने प्रदक्षिणा नाम के अनुरूप ही इस काव्य में रामकथा की परिक्रमा मात्र है। इस काव्य की अपनी कोई पूर्ण स्वायत्तता नहीं, क्योंकि इसमें पंचवटी, साकेत और लीला के महत्वपूर्ण अंशों के सहारे सम्पूर्ण रामकथा को अत्यंत क्षिप्र गति से प्रस्तुत किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्णता हेतु गुप्त जी ने प्रायः अपने पहले के रामकाव्यों के अंशों को कथा-क्रम में व्यवस्थित कर प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण रामचरित को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करते समय पंचवटी साकेत तथा लीला के अंशों के मध्य जो रिक्तता रही,

उसकी पूर्ति हेतु कुछ काव्य पंक्तियां रचकर गुप्तजी ने इसे पूर्ण रूप दिया है।

डिमाई आकार वाली इस पुस्तक में कुल छियत्तर पृष्ठ हैं। सन् १६५० से १६७१ तक हुए अठारह संस्करण इसकी लोकप्रियता के स्वतः प्रमाण हैं। मात्र ७५ पैसे की यह पुस्तिका गुप्त जी के सम्पूर्ण वाङ्मय की भाँति साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित हुई है।

राम भक्त कवि मैथिलीशरण ने रामकथा को केन्द्र बनाकर 'ऊर्मिला' (अपूर्ण) 'मेघनादवध' (हिन्दी काव्य रूपान्तर) 'साकेत', पंचवटी तथा 'लीला' के प्रणयनोपरांत इस अंतिम राम काव्य द्वारा सम्पूर्ण रामकथा की परिक्रमा की है। इसीलिए 'प्रदक्षिणा' राम काव्य-परम्परा की नितांत नवीन कृति न होकर गुप्त जी की रामचरित प्रधान बहुचर्चित कृतियों-'पंचवटी' एवं 'साकेत' के अंशों पर विशेषतः आधारित है। आलोच्य कृति की दो तिहाई सामग्री जहाँ उपर्युक्त प्रबन्ध काव्यों से उद्धृत हैं, वहीं उसका एक तिहाई अंश नवीनता लिए है। इस प्रकार 'प्रदक्षिणा' को मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्यों का 'उपसंहार' कहना ही उचित होगा। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास कृत 'मानस' के उत्तरकांड में सम्पूर्ण रामचरित को शम्भु-उमा संवाद के रूप में प्रस्तुत करने के पश्चात् उसके उपसंहार-रूप में 'कागभुसुण्डि-गरूड़-संवाद' दोहा सं० ६४ से ६८ तक प्रस्तुत किया गया है, 'प्रदक्षिणा' का स्वरूप बिल्कुल वैसा ही है। स्वयं कवि ने कृति की भूमिका के रूप में काव्यारम्भ के पूर्व जो विचार व्यक्त किये, वे ध्यान देने योग्य हैं–

'साकेत' प्रकाशित होने के पश्चात् थोड़े से प्रयास से अपने प्रभु की प्रदक्षिणा का यह अवसर मुझे मिल गया था, परन्तु इसके प्रकटीकरण में बरसों का विलम्ब हुआ। फिर भी आशा है, मेरे पांठक इसमें मेरा साथ देंगे।[1]

उपर्युक्त स्वीकरोक्ति में 'थोड़े से प्रयास से' शब्दों द्वारा कवि के कहने का आशय वस्तुतः यही है कि इसकी रचना में उसे किसी नवीन कृति जैसा

(१) *प्रदक्षिणा - भूमिका*

अथक प्रयास नहीं करना पड़ा, क्योंकि इसका अधिकांश भाग 'साकेत' पर आधारित है और इसके तीन छंद 'पंचवटी' से उद्धृत हैं। इसी प्रकार 'इसके प्रकटीकरण में बरसों का विलम्ब हुआ' का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि सन् १६३२ में 'साकेत' के प्रकाशन के पश्चात् दो या तीन वर्षों के अन्दर ही कवि ने इसे पूर्ण कर लिया था; किन्तु 'लीला' गीतिनाट्य की भाँति इसके प्रकाशन में भी विलम्ब हुआ। अतः यह कृति सन् १६५१ में प्रकाशित हो पायी। 'प्रदक्षिणा' में पृष्ठ चौबीस के दूसरे छंद से पृष्ठ पच्चीस के दोनों छंद (इस प्रकार कुल तीन छंद) 'पंचवटी' के 'पूर्वाभास' से ज्यों के त्यों उद्धृत हैं। तदनंतर 'प्रदक्षिणा' के पृष्ठ चौतीस और पैंतीस की चार-चार पंक्तियाँ (कुल एक छंद) 'साकेत' अष्टम सर्ग के अन्तर्गत चित्रकूट के 'लक्ष्मण-ऊर्मिला-मिलन' जैसे मार्मिक प्रसंग से ग्रहण की गई हैं। इसके उपरान्त विवेच्य कृति के पृष्ठ अड़तीस से तिहत्तर (की अंतिम चार पंक्तियाँ छोड़कर) तक की सम्पूर्ण चौहत्तर छंदों की सामग्री 'साकेत' के ग्यारहवें सर्ग (पृष्ठ चार सौ पंद्रह से चार सौ अड़तालीस तक) से ज्यों की त्यों अर्थात बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण की गई हैं। 'प्रदक्षिणा' के अड़तालीस छंद नये हैं जो रामकथा के तीव्र प्रवाह को गति एवं संगति देने के लिए रचे गए हैं। गुप्त जी अपने उत्कृष्ट देश-प्रेम से प्रेरित होकर ही काव्य-सृजन की ओर उन्मुख हुए थे। कविता उनकी देश भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम ही है, इसीलिए स्वर्णिम अतीत के गौरवशाली चरित्रों, प्रसंगों या कथाओं का आधार लेकर अपनी राष्ट्रीयता का उद्घोष किया है। उनके इष्टदेव राम युगधर्म से अनुप्राणित हैं। उनकी स्पष्ट घोषणा है–

"मुझे आत्म-रक्षा से पहले
है स्वदेश - रक्षा कर्त्तव्य"[१]

'प्रदक्षिणा' वर्णनात्मक काव्य में कृति के नामकरण के अनुसार कवि ने रामकथा की प्रदक्षिणा, परिक्रमा अथवा 'फेरी' लगाई है। इसीलिए उसके कथन प्रवाह में तीव्रता या क्षिप्रता है। एक सौ छब्बीस ताटंक और वीर छंदों में रचित इस काव्य में अड़तालीस नये छंद हैं, शेष अठत्तर छंद पंचवटी

(१) प्रदक्षिणा-पृ०-१३

साकेत और लीला काव्यों से उद्धृत हैं। आलोच्य काव्य कृति का कथा-विन्यास 'साकेत' की भाँति न होकर अधिकांशतः 'मानस' पर आधारित है। केवल प्रदक्षिणा का लक्ष्मण-ऊर्मिला-प्रसंग साकेत के अष्टम सर्ग से ग्रहण किया गया है, शेष सम्पूर्ण कथा-विन्यास का आधार और आदर्श 'मानस' है। कवि ने इसमें क्षिप्र गति अपनाई है। काव्य के आरम्भिक (प्रथम) छंद में यद्यपि लक्ष्मण का महिमा-गान हुआ है, किन्तु वे इस काव्य के नायक नहीं हैं। राम-जन्म से लेकर उनके राज्याभिषेक तक की सारी कथा का अनुकीर्तन करने के मध्य सम्बन्धित पात्रों के चरित्र-चित्रण अथवा वस्तु-वर्णन के लिए कवि के पास किंचित मात्र अवकाश नहीं रहा है। आलोच्य काव्य तुलसी कृत 'मानस' के कागभुसुण्डि-गरुड़-संवाद से मिलता जुलता प्रतीत होता है। अतएव 'प्रदक्षिणा' को रामचरित का सारांश कहना ही उचित होगा। कृति की भाषा और पदावली परिष्कृत है। इसमें रामकथा का विवरण मात्र है। अपने ही 'पंचवटी' तथा 'साकेत' जैसे काव्यों की सामग्री का विन्यास कवि ने इस चातुर्य से किया है कि सामान्य पाठक को इसका अनुमान कर पाना कठिन है। वस्तुतः 'प्रदक्षिणा' कवि गुप्त के प्रौढ़काल की सृष्टि है। इसीलिए उसमें कलागत प्रौढ़ता तथा निखार का आना स्वाभाविक था। जिस प्रकार तुलसी का उद्देश्य लोकमंगल की स्थापना था, वैसे ही गुप्त जी का उद्देश्य रामकथा के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय भावना को जन सामान्य तक पहुँचाना था। इसीलिए आलोच्य कृति में भी वह अपने इस महत् उद्देश्य की पूर्ति में सफल हुए हैं। उनकी लोक-कल्याणकारी दृष्टि एवं रामराज्य की परिकल्पना पर तुलसी तथा गाँधी की विचारधारा के संयुक्त प्रभाव की झलक का सहज ही अनुमान निम्नलिखित पंक्तियों से किया जा सकता है –

निर्मम होकर भी निज युग की मर्यादा प्रभु ने रक्खी।
जीवन का मधु दिया जनों को, कटुता आप यहाँ चक्खी।
रक्षक मात्र रहे वे राजा, राज्य प्रजा ने ही भोगा।
हुआ यहाँ तब जो जन-रंजन, वह कब और कहाँ होगा।[१]

गुप्त जी ने 'पंचवटी' एवं 'साकेत' के काव्यांशों का प्रयोग अत्यन्त

(१) प्रदक्षिणा, पृ० ७६, अंतिम छंद।

कौशल से किया है। उदाहरणार्थ चित्रकूट में लक्ष्मण-ऊर्मिला-मिलन-प्रसंग के जिस अंश को 'प्रदक्षिणा' में उद्धृत किया है उसके बीच प्रबन्धात्मकता की सृष्टि हेतु कवि ने चार नई पंक्तियों की रचना करके उनका विन्यास किया है।[1]

इसी प्रकार 'सांकेत' में हनुमान द्वारा भरत को लक्ष्मण के 'शक्ति' लगने तक की सूचना एवं कथा-प्रवाह की संगति बिठाने हेतु छंदों में यथावश्यकता शब्द-परिवर्तन भी किए हैं। इस परिप्रेक्ष्य में 'साकेत' के हनुमान की उक्ति का 'प्रदक्षिणा' में प्रसंगानुकूल किया गया संशोधन-उल्लेखनीय है। इसमें हनुमान का कथन कवि की उक्ति बन गई है--

साकेत – **पंजर भग्न हुआ, पर पक्षी**
अब भी अटक रहा है आर्य !
आगे बढ़ बोला मैं - 'प्रभुवर',
किंकर कर लेगा यह कार्य। [2]

प्रदक्षिणा – **"पंजर भग्न हुआ, पर पंछी**
अब भी अटक रहा है आर्य !"
किया अंत में हनूमान ने
प्रभु के बल से ही वह कार्य। [3]

कवि के परिपक्व काल की रचना होने के कारण 'प्रदक्षिणा' की कथा वेगवती धारा सी प्रवाहित हुई है। पदावली परिष्कृत एवं प्रौढ़ है। गुप्त जी ने 'साकेत' की भाँति इसमें मनोनुकूल 'क्रम-विपर्यय' नहीं किया। 'प्रदक्षिणा' में प्रयुक्त सरस आख्यानमयी वर्णनात्मक शैली ने कवि के 'जयभारत' के लिए पूर्व पीठिका का कार्य किया है। लंका-युद्ध में परस्पर युद्धरत वीरों के ओज और तेज को द्विगुणित करने में अविच्छिन्न कथा-प्रवाह अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कथा--प्रवाह की अखण्डता एवं क्षिप्रता को ध्यान में रखकर कवि ने

---

(१) मिलाइए (अ) साकेत – पृ०-८ तथा (ब) प्रदक्षिणा - पृ० ३४-३५

(२) साकेत ११/ पृ० ४४८

(३) प्रदक्षिणा, पृष्ठ-७३, पंक्ति सं० ६ से १२

रामकथा के अनेक आवश्यक स्थलों को भी काव्य में स्थान नहीं दिया। वैसे सम्पूर्ण काव्य में गत्यात्मक चित्रों तथा संक्षिप्त और संतुलित संवाद-सृष्टि से जीवंतता एवं नाटकीयता का सुन्दर समाहार हुआ है। अभिव्यंजना के क्षेत्र में गुप्त जी की उपलब्धि माइकेल मधुसूदन दत्त कृत 'मेघनाद-वध' से प्रभावित होने का परिणाम है।

सन् १९५० में प्रकाशित 'प्रदक्षिणा' लघुकथात्मक काव्य है जिसे संक्षिप्त 'रामायण' भी कहा जा सकता है। इस काव्य का एक बैठक में पारायण हो सके शायद कवि का यही उद्देश्य रहा है। रामजन्म से लंका-विजय और तदनन्तर रामराज्य-स्थापना तक की प्रमुख घटना-प्रधान रामकथा को कवि गुप्त ने अड़सठ पृष्ठों में सीमित कर दिया है। यही कारण है कि विवेच्य काव्य में रामकथा की लगभग समस्त घटनाओं का मात्र उल्लेख हो सका है। 'प्रदक्षिणा' का विशेष साहित्यिक महत्व नहीं है। रामभक्त गुप्त जी ने निःसन्देह अन्य रामभक्तों के नैतिक उपयोग हेतु ही इस काव्य की रचना की थी।

निष्कर्षत : 'प्रदक्षिणा' गुप्त जी की पूर्ण मौलिक काव्य कृति नहीं है। फिर भी इसकी भाषा प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। इसकी संवाद-योजना सरल, बोधगम्य, संक्षिप्त एवं प्रवाहमयी है। इसके अतिरिक्त इसमें यथेष्ट नाटकीयता का भी निर्वाह हुआ है। उल्लेखनीय यह भी है कि अन्य रामकाव्यों की भाँति प्रदक्षिणा पर बंगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त का स्पष्ट प्रभाव है।

काव्य कृति के अन्तर्गत अधिकांश छंद कवि गुप्त ने अपने प्रसिद्ध रामकथा-प्रधान काव्यों से ग्रहण किये हैं। यही कारण है कि प्रदक्षिणा की भाव व्यंजना, रस-योजना और उसका शिल्प-विधान उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ता से सम्पन्न है। इसके फलस्वरूप ही यह काव्यकृति रामभक्तों के बीच विशेष लोकप्रिय हुई।

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

साकेत अनुशीलन

'साकेत अनुशीलन' ग्रंथ में 'साकेत' के विविध पक्षों का सम्यक् आकलन है। इसमें लेखक ने 'साकेत' की भावात्मक और कलात्मक प्रौढ़ता की अभिव्यक्ति अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ की है। डॉ पाण्डेय रामेन्द्र ने कृति और कृतिकार के प्रति भाव तादात्म्य स्थापित करते हुए अपेक्षित न्याय किया है।

- प्रो0 प्रेमशंकर तिवारी
हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

'साकेत-अनुशीलन' समीक्षा ग्रंथ डॉ रामेन्द्र के पूर्व ग्रंथों से कई मायने में भिन्न और मौलिक है। उन्होंने इस शोधपरक ग्रंथ में 'साकेत' की भाव सम्पदा तथा शिल्प के प्रेरणा स्रोतों को विशेष रूप से विवेचन का विषय बनाया है।

- डॉ0 कौशलेन्द्र पाण्डेय
समीक्षक, कवि एवं कथाशिल्पी

डॉ0 पाण्डेय रामेन्द्र दीर्घकाल से 'साकेत' का अध्ययन अध्यापन करते आये हैं। इसके फलस्वरूप उनके द्वारा अर्जित निष्कर्ष तथा मान्यतायें किसी भी पाठक को आकर्षित करती हैं। मेरे निश्चित मत में डॉ0 पाण्डेय की यह कृति मैथिलीशरण जी गुप्त के कृतित्व को अधिकाधिक उद्भाषित करती है। डॉ0 पाण्डेय को इस नवजात कृति के लिए मेरा साधुवाद।

- 'लोकभूषण' डॉ0 महेश अवस्थी
निदेशक : लोक साहित्य संस्थान
दारागंज-प्रयाग

मानसकार की पात्र-परिकल्पना

डॉ0 पाण्डेय रामेन्द्र ने सरल, सहज भाषा-शैली के माध्यम से 'मानस' में आये प्रमुख चरित्रों की विशेषताओं का रेखांकन किया है जिसमें तुलनात्मक तथा निर्णयात्मक पद्धति का भी विनियोग है। इससे तुलसी की चरित्र-परिकल्पना का महत्व तो उद्घाटित हुआ ही है, किसी सीमा तक **नाना पुराण निगमागमसम्मतं** में कथित अनुदान की तुलना में उनका महिमामंडित व्यक्तित्व उद्भासित हो सका है। डॉ0 पाण्डेय जैसे तुलसी के प्रति समर्पित भाषक से सहृदयजन कुछ न कुछ अभिनव प्राप्ति की आशा करेंगे ही।

- डॉ0 शंकरशरण तिवारी
ललितपुर, (बुंदेलखण्ड)



डॉ0 पाण्डेय रामेन्द्र

पिता : स्व० चन्द्रशेखर पाण्डेय 'चन्द्रमणि'

जन्म-स्थान : ग्राम एवं पत्रालय-बन्नावाँ (बछरावाँ) रायबरेली

शिक्षा : एम० ए०, पी-एच० डी० (लखनऊ विश्वविद्यालय)

सम्प्रति : अक्ष्यक्ष : स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग फ़ीरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली (उ०प्र०)

प्रकाशित पुस्तकें (सम्पादन)

१-आधुनिक रसखान : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (१६७८)
२-मानस-चंदन : (१६८१)
३-आचार्यश्री : (संयुक्त : १६८१)
४-शत्रुघ्नलाल शुक्ल : जीवन और साहित्य (१६८८)
५-डॉ० महेश अवस्थी की साहित्य-साधना (२०००)
६-लोकभूषण डॉ० महेश प्रताप नारायण अवस्थी (अभिनन्दन-ग्रन्थ : २००१)

मौलिक समीक्षा कृतियाँ

७-मानसकार की पात्र-परिकल्पना (१६६८)
८-मानस-चिंतन (१६६६)
६-साकेत अनुशीलन (२००१)
१०-मैथिलीशरण गुप्त के राम काव्य (२००२)

शोध-ग्रन्थ (अप्रकाशित)

११-भारतेन्दु की भक्ति-भावना (लघु शोध-प्रबन्ध : १६६५)
१२-भारतेन्दु-साहित्य के प्रेरणा-स्रोत (पी-एच० डी० शोध-प्रबंध : १६७४)

अप्रकाशित राम-साहित्य

१३-सप्त प्रबंध सुभग सोपाना
१४-तुलसी वाड्.मय
१५-अस मानस मानस चख चाहिय
१६-राम-साहित्य सन्दर्भ

अ·

- 'मानस चंदन' शोध पूर्ण स्मारिका का दस वर्षो (१६८१-१६६२) तक संपादन
- 'काशिका' के शोध पूर्ण विशेषांकों-'रायबरेली अंक' (१६६३-६४) तथा 'फ़ीरोज़ गाँधी कालेज अंक' (२००१-२००२) का सम्पादन
- 'बैसवारा' तथा 'पूर्वापर' त्रैमासिक पत्रिकाओं का सम्पादन (१६७८-१६८१) अब तक [illegible] शोध पूर्ण लेखों का स्तरीय पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशन